प्रतिष्ठान - पत्रिका

(जान ग्रन्थावली विशेषांक)

2003



राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

Rajasthan Oriental Research Institute, JODHPUR

राजस्थान तथा इतस्ततः प्रकीर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रहण, अन्वेषण, संरक्षण, सम्पादन एवं प्रकाशनादि उद्देश्यान्तर्गत सन् 1950 में संस्कृत मण्डल के अभिधान से तथा पश्चाद्वर्ती 1954 के वर्ष में राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के नाम से अभिहित यह विभाग विगत् 53 वर्षों से अपने गंतव्य की ओर अग्रसर है –

* निदेशालय जोधपुर एवम् सात शाखा कार्यालयों (जयपुर, अलवर, भरतपुर, बीकानेर, कोटा, चित्तौड़ एवं उदयपुर) में अद्यावधि 1,14,504 ग्रन्थों का संग्रह हो चुका है । ये ग्रन्थ वैद–वैदिक, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, तंत्र–मंत्र, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि 25 विषयों में विभाजित हैं । सभी ग्रन्थ वैज्ञानिक विधि से संरक्षित हैं ।

* 205 महत्वपूर्ण ग्रन्थों को पाठालोचन पद्धति से सम्पादित कर प्रकाशित करवाया गया है । सभी प्रकाशन विद्वज्जनों से समादृत एवं प्रशंसित हैं । इस वर्ष जयसिंहप्रणीत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यरस', 'राजस्थान का संत – साहित्य' एवम् 'मुंहता नैणसी री ख्यात' (पुनर्मुद्रित) भाग –2 प्रकाशित करवाये गए हैं । इसी प्रकार हिन्दी–राजस्थानी सूचीपत्रों के भाग 17, 18, 19 शोध जगत् हेतु उपलब्ध करवाए गए हैं ।

* ग्रन्थ संरक्षण योजनान्तर्गत हजारों ग्रन्थों को कालकवलित होने से बचाया गया एवं माइक्रोफिल्मिंग यूनिट से अब तक 67,500 पत्रों का अणु–चित्रण किया गया है । 862 ग्रन्थों की मास्टरकॉपी बनाकर सुरक्षित किया गया है ।

* विगत वर्षों में विभाग द्वारा विभिन्न राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ यथा – मधुसूदन ओझा का सारस्वत साधना (दो भाग), राजस्थान का ऐतिहासिक गद्यसाहित्य,राज. का ऐतिहासिक भाषा सहित्य, राज. का ऐतिहासिक संस्कृत साहित्य, राज. के नाथ सम्प्रदाय एवं साहित्य एवं राजस्थान का संत–साहित्य आयोजित की जाकर समग्र आलेखों को प्रकाशित किया गया है ।

* निदेशालय एवं समस्त शाखा कार्यालयों में महत्वपूर्ण सन्दर्भ पुस्तकालय संधारित हैं । निदेशालय जोधपुर में 26,713 मुद्रित पुस्तकें हैं, जिनमें कई दुर्लभ पुस्तकें व 6,000 के लगभग पत्रिकाएं हैं, जिनका देश–विदेश के शोधार्थी उपयोग कर रहे हैं ।

* जैसलमेर की विश्वविख्यात एवं दुर्लभ हस्तलिखित सामग्री का 1962 में दोहन कर अनेक मूल ग्रन्थ, प्रतिलिपियाँ प्राप्त की गई हैं जिनमें 282 ग्रन्थों की माइक्रोफिल्म तथा 983 महत्त्वपूर्ण प्रतिलिपियों का संग्रह है । विश्वविख्यात ध्वन्यालोकलोचन (विक्रम संवत् 1204) तथा सचित्र मेघदूत इसी संग्रह से प्राप्त हैं ।

* संस्कृत–प्राकृत एवम् राजस्थानी भाषा के दुरूह प्रकाशनों के हिन्दी अनुवाद का कार्य विगत सत्र में प्रारम्भ किया गया था। 8 महत्वपूर्ण प्रकाशनों का अनुवाद अब तक किया जा चुका हैं व यह कार्य निरंतर जारी है ।

* विभाग द्वारा संस्कृत–प्राकृत व हिन्दी राजस्थानी के मिलाकर अब तक 52 सूचीपत्र प्रकाशित किए जा चुके हैं । सूचीपत्र निर्माण का समस्त कार्य इस वर्ष पूर्ण किया जा रहा है ।

* विगत वर्षों में शेखावटी के जान कवि की समग्र रचनाओं का सम्पादन मयअनुवाद करने की एक वृहद् योजना हाथ में ली गई थी । इसके अन्तर्गत तीन रचनाओं–कथा तमीम अनसारी, कथा कामरानी, कथा रूपमंजरी को प्रतिष्ठान पत्रिका के वार्षिक अंक के रुप में प्रकाशित किया जा रहा है । यह कार्य पूर्णता तक जारी रहेगा । विभाग की प्रतिवर्ष कम से कम एक पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित करने की योजना है ।

* प्रतिष्ठान की हस्तलिखित एवं चित्रित सामग्री का प्रसार–प्रचार जन–जन तक हो इस निमित्त एक स्थाई आर्ट–गैलरी (तीन हॉल में) का निर्माण किया गया है । राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत 15 लाख की राशि से इस हेतु नये परिसर का निर्माण करवाया जा रहा है ।

प्रतिष्ठान - पत्रिका

(कवि जान ग्रन्थावली विशेषांक)

सन् 2003

प्रधान सम्पादक

वीना लाहोटी

(निदेशक, राज. प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

(Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur)

सम्पादक मण्डल

* ओ३म्प्रकाश शर्मा
* डॉ. वसुमती शर्मा
* श्रीमती कलावती माथुर
* डॉ. उषा गोस्वामी
* कमलकिशोर साँखला

अनुवादक

* डॉ. देवकुमार

प्रथमावृत्ति -500
मार्च, 2003

पी. डब्ल्यू. डी. रोड
जोधपुर (राज.)
दूरभाष -: 2430244

मूल्य : 35.00/-

मुद्रक
विजय प्रिण्टर्स
त्रिपोलिया बाजार, जोधपुर
दूरभाष :- 2621666

अनुक्रम

वन्दनीय प्राच्यविद्या, तुम विश्व-आर्य-कुल प्यारी हो
पूज्य अर्प्य-गृह लक्ष्मि-सरस्वति, राज-प्रतिष्ठान उजियारी हो
श्रेष्ठ आर्य-ज्ञान-स्रोतिनि, प्राज्ञ हृदय की तुम स्वामिनि
प्रज्ञा-ज्योति आर्यत्व प्रचारिणि प्राच्य-वीर्य-घन-दामिनि
विज्ञ-धर्म-जीवन-महिमा-मयि, तप-निसृता संजीवनि
प्राज्ञ-शील-सुषमामयि, सुन्दरि ओ माँ, विश्व-सति-मणि
अयि राजस्थान-वैभव-प्रकाशिनि, विश्व-विज्ञ-गुण-लुभावनि
अयि त्रिभुवन अभिवंद्या, राज प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान-विराजनि
तुम हो शक्ति अजेय विश्व की, हे अनन्त प्रभा प्रकाशिनि
अयि स्वदेश-दुख-दारिद्र-दलिनि अमित तोष प्रदायिनि
अयि राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान विराजिनि
तुममें भक्ति नि:शेष, विश्व की श्रेय-प्रेय-संचारिणि
हम सब सेवा में रहते अयि वरदे कल्याणिनि
शुभदे अयि जन-जन-मुद-कारिणि, अमेय बलधारिणी
राजस्थान प्राच्य-विद्या विभाग में, जीवन ज्योति जगाओ
अयि अक्षय-सुकृतमयि माँ ! दयाकर पय पान कराओ
त्रितय-शक्ति-पूरित स्ववक्ष प्राच्य-प्रतिष्ठान में पुंस्त्व-पय प्याओ ।
खल-गण-खेदिनि, सज्जन-मन-रंजिनि, शुभ वीणा स्वराओ ॥

करो सार्थ मननीय नाम निज, अहो सॅस्कृत कुल-कामिनि
राजस्थान-विराजिनि, प्राच्यविद्या ! प्रतिष्ठान सरसाविनि
प्राच्य-प्रज्ञा की पुण्य-पताका सतत सर्वत्र प्रकाशिनि
हम सेवक नित करें आरती अयि प्राच्य-विद्या स्वामिनि

डॉ. देवकुमार
गवेषक रा. प्रा. वि. प्र. भरतपुर

प्रधान सम्पादकीय

भारतीय मनीषियों ने कवि की यशस्काया को जरामरणादिभयविमुक्त एवं कालजयी के अभिधान से निरूपित किया गया है। विवेच्य कवि जान न्यामतखाँ पर यह बात पूर्णतया सटीक लागू होती है ।

सन् १९५३ में जान विरचित दो ऐतिहासिक रचनाएँ ''क्यामखां रासा'' एवं ''दीवान आलिफखां'' की पेडी मूलरूप में प्रकाशित किए गए थे । वर्ष १९९६ में इन दोनों काव्यों का हिन्दी अनुवाद भी विद्वज्जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया जा चुका है । इन दोनों रचनाओं के लिए शोधार्थियों, विद्वानों एवम् सामान्यजनों से समानरूप से सराहना मिली है । फलस्वरूप तीन आवृत्तियों में इन कृतियों के पुनर्मुद्रण प्रकाशित किए जा चुके हैं ।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी एवं राजस्थानी साहित्य के इस उपेक्षित कवि की ७८ के करीब रचनायें हैं जो विविध विषयक हैं। गत वर्ष विभाग द्वारा निर्णय लिया गया थाा कि इस कवि का समग्र कृतित्व सानुवाद विद्वज्जनों के समक्ष आना चाहिए, तदनुरूप निदेशालय एवं शाखाओं के शैक्षिक अधिकारियों द्वारा सम्पादन कार्य शुरू किया गया । इसके सकारात्मक प्रतिफलन के रूप में इस समय विभाग के पास जानकृत ४४ पाण्डुलिपियों की सम्पादित प्रतियां उपलब्ध हैं ।

जानप्रणीत 'कथा रूपमंजरी', 'कथा कामरानी' एवम् 'कथा तमीम अनसारी' सानुवाद विद्वत् प्रसाद के रूप में आम पाठकजनों को समर्पित करते हुए मुझे परमानन्द की अनुभूति हो रही है । मुझे विश्वास है कि इसके द्वारा सुधी पाठकों का आकर्षण मध्यकालीन प्रेमाख्यानों की ओर बढ़ेगा और अनुसंधित्सुओं हेतु उपयोगी सूत्र मिलेंगे । कवि जान की शेष रचनाएं इस वर्ष व आने वाले वर्षों में विभाग द्वारा पत्रिका/पुस्तकों के रूप में विद्वज्जगत् के समक्ष प्रस्तुत की जावेगी ।

वीना लाहोटी
आर. ए. एस.
निदेशक राज. प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

प्राक्कथन

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन जान कवि अपनी विपुल रचनावली के बावजूद हिन्दी साहित्य में अद्यावधि उपेक्षित हैं । जयपुर के स्व. पण्डित पुरोहित हरिनारायण शर्मा, तत्कालीन (अगस्त १९३८) पत्रिका धूमकेतु के सम्पादक एवम् जयपुर के ही पं. झाबरमल शर्मा का विचार था कि जान कवि का वास्तविक नाम अलफखां था और जान के उप नाम से वो लेखन कार्य करते थे । बाद में डॉ. दशरथ शर्मा, श्री रावत सारस्वत एवम् प्रसिद्ध साहित्य सेवी श्री अगरचन्द नाहटा प्रभृति साहित्यानुरागियों के सतत प्रयासों से जान ग्रन्थावली का परिचय विद्वज्जगत् को मिला और यह संग्रह हिन्दुस्तान अकादमी इलाहाबाद को प्राप्त हो गया । इस संबंध में विस्तृत जानकारी राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित कवि जान रचित क्यामखां रासा में विस्तार से दे दी गई है । बाद में ई. १९४५ में श्री कमल कुलश्रेष्ठ ने भी जान के ग्रन्थों का अपने ढ़ंग से वर्गीकरण चरित काव्य, मुक्तक, उपदेशात्मक, कोश एवम् मिश्रित रूप में किया । चरित काव्यों का विभाजन उन्होंने उप वर्गों में करते हुए कहानियों का भी दो वर्गों में विभाजन किया ।

श्री परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि जान कवि की ७० कृतियों में कईयों की गणना प्रेमाख्याओं के अन्तर्गत की जाती हैं । जान कवि के ८ और ग्रन्थों का उल्लेख रामकिशोर मौर्य ने राजस्थान के विभिन्न संग्रहालयों का अन्वेषण कर आलेख का प्रकाशन हिन्दुस्तानी १९६२ (अक्टू-दिसम्बर) में किया था ।

कवि जान की कृतियों का प्रवृत्तिमूलक वर्गीकरण नाम से डॉ. हरीश का एक आलेख मार्च १९९३ में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की ''परिषद् पत्रिका'' में प्रकाशित हुआ था जिसमें डॉ. हरीश ने जान कवि का सृजनकाल संवत् १६६९ से १७२१ तक माना है । डॉ. हरीश के अनुसार जान की प्रथम रचना ''कवलावती'' और अंतिम ''पदनामा नौसेखाँ '' है । उनके अनुसार जान कवि प्रसिद्ध कवयित्री ताज के वंशज थे । डॉ. हरीश ने जान के ग्रन्थों का विभाजन प्रेमाख्यान, काव्यशास्त्रीय, कथाकाव्य, नीति उपदेशप्रधान काव्य, ऐतिहासिक काव्य, शब्दशास्त्रीय काव्य, प्रहेलिका, कामशास्त्रीय, संगीत, आयुर्वेद, भूगोल एवम् रत्नपरीक्षादि विभिन्न विषयों में विभाजित किया । हिन्दुस्तान अकादमी में निम्न जान की रचनाएँ हैं ।

(१)	कथा कवलावती	संवत्	१६६९
(२)	कथा कलावंती	''	१६६९
(३)	कथा कौतूहली	''	१६७५
(४)	कथा कनकावती	''	१६७५
(५)	कथा कामलता	''	१६७८
(६)	कथा सतवंती	''	१६७८

(७)	कथा सीलवंती	"	१६८४
(८)	कथाा पुहुप वरिषा	"	१६८५
(९)	कथा रूप मंजरी	"	१६८५
(१०)	कथा रतनमंजरी	"	१६८६
(११)	कथा अरदसैर पातिसाह	"	१६९०
(१२)	कथा बलूकिया विरही	संवत्	१६९०
(१३)	ग्रन्थ लैले मजनू	"	१६९१
(१४)	कथा रतनावती	"	१६९१
(१५)	कथा कामरानी प्रीतमदास	"	१६९१
(१६)	कथा मधुकर मालती	"	१६९१
(१७)	कथा चन्द्रसेन राजा सीलनिधान	"	१६९१
(१८)	कथा छीता	"	१६९२
(१९)	कथा कुलवंती	"	१६९३
(२०)	कथा मोहिनी	"	१६९४
(२१)	कथा खिज्रखां देवलदे	"	१६९४
(२२)	कथा तमीम अनसारी	"	१७०२
(२३)	कथा कलन्दर	"	१७०२
(२४)	कथा निरमल	"	१७०४
(२५)	कथा छवी सागर	"	१७०६
(२६)	कथा नल दमयन्ती	"	१७१८
(२७)	बांदीनावा		अज्ञात
(२८)	कथा सुभटराय	"	१७२०
(२९)	कथा विरहसत	"	१६७१
(३०)	पवंगम बरवा छन्द	"	अज्ञात
(३१)	षटऋतु बरवा छन्द	"	अज्ञात
(३२)	बारहमासा	"	अज्ञात
(३३)	ग्रन्थ बरवा	"	अज्ञात
(३४)	दरसनांवां	"	अज्ञात
(३५)	बारहमासा फुनिंग छंद	"	अज्ञात
(३६)	सिंगार सति	"	१६७१
(३७)	अलखनांवां षुड्डल	"	अज्ञात
(३८)	ग्रन्थ पैमनामा	"	१६७५
(३९)	दरसनावां षुड्डल	"	अज्ञात
(४०)	घूंघटनांवां	"	अज्ञात
(४१)	रसकोष	"	१६७६
(४२)	भावसति	"	१६७८
(४३)	सतनांवां	"	१६९३

(४४)	चेतन नामा	"	अज्ञात
(४५)	शिख ग्रन्थ (शिक्षा ग्रन्थ)	"	अज्ञात
(४६)	सुधा शिख	"	अज्ञात
(४७)	बुधि दाइक	"	अज्ञात
(४८)	बुद्धिदीप	"	अज्ञात
(४९)	रस तरंगिणी	"	१७११
(५०)	वियोग सागर	"	१७१२
(५१)	सिंगार तिलक	"	१७१३
(५२)	भाव कल्लोल	संवत्	१७१३
(५३)	गूढा ग्रन्थ	"	अज्ञात
(५४)	ग्रन्थ देसावली	"	अज्ञात
(५५)	उत्तम सबद	"	अज्ञात
(५६)	बर्न नांवां	"	अज्ञात
(५७)	नाममाला अनेकार्थी (अपूर्ण)	"	अज्ञात
(५८)	मानविनोद	"	अज्ञात
(५९)	कद्रंप कल्लोल	"	अज्ञात
(६०)	सवैया	"	अज्ञात
(६१)	सवैया या झूलणा	"	अज्ञात
(६२)	पदनांवां लुकनाव (अनुदित)	"	१७२१
(६३)	पदनांवां नोसैरवा	"	१७२१

डॉ. हरीश एवं कमल कुलश्रेष्ठ ने अपने-अपने आलेखों में हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद में ७० ग्रन्थ बताए हैं लेकिन डॉ. हरीश के आलेख में ६३ ग्रन्थों का ही जिक्र है जबकि श्री कुलश्रेष्ठ ने ६८ ग्रन्थों की सूची दी हैं। डॉ. हरीश के अनुसार २७ कृत्तियां प्रेमाख्यानपरक है एवम् अन्य विविधवर्गीय। हिन्दुस्तानी अकादमी की ७० रचनाओं के अतिरिक्त शेष ८ रचनाएँ राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों में हैं जिनके नाम है -:

(१) कविवल्लभ
(२) बुद्धिसागर
(३) मदनविनोद
(४) रसमंजरी
(५) ज्ञानदीप
(६) क्यामखांरासा
(७) अलफखां की पेड़ी
(८) संगीत कुलदीप

इस प्रकार से हिन्दुस्तान अकादमी एवं राजस्थान के संग्रहालयों को मिलाकर जान कवि की ७८ रचनाएं हो

जाती हैं । राजस्थान प्राच्यविद्या में हिन्दुस्तान अकादमी से ५४ रचनाएं सन् १९७० में मंगवाई गई थी और शेष रचनाएं विभाग में उपलब्ध ग्रन्थों की हैं । आलोच्य तीन प्रेमाख्यानों कथा रूपमंजरी, कथा कामरानी एवं कथा तमीम अनसारी का सम्पादन हिन्दुस्तान अकादमी की फोटो प्रतियों के आधार पर ही किया गया है । श्रीयुत कमल कुलश्रेष्ठ के अनुसार पहले ये सभी प्रतियां एक ही गुटके में बंधी हुई थी जो बाद में संभवत: अलग-अलग प्रतियों में विभाजित कर दी गई होगी ।

कथा रूपमंजरी

हस्तिनापुर के धार्मिक राजा हस्तिमल एवं पटरानी प्रभावती सन्तानाभाव से दु:खी थे । फिर परमात्मा की कृपा से उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम ज्ञानसिंह रखा गया । धीरे-धीरे राजकुमार समस्त विद्याओं में निष्णात हो गया और वहाँ के ही एक निवासी न्यानसिंह को अपना मित्र बना लिया । एक बार राजकुमार ने स्वप्न में एक अनन्य सुन्दरी को देखा और प्रेमोन्मत हो गया । कुछ अन्तराल के बाद पुन: सुन्दरी ने स्वप्नदर्शन के माध्यम से कंकण पर हाथ रखकर कंकणपुर नगर, कान के स्पर्श से पिता का नाम कर्णसिंह और अभिराम चाल दिखाकर अपनी माता का नाम हंसगामिनी एवम् दर्पण प्रदर्शित कर अपना स्वयम् का नाम रूपमंजरी होने का संकेत किया जिसे राजकुमार के मित्र ने सार्थ विवेचित किया । दोनों मित्र संकेतित नगर में पहुँचकर राजकुमारी की विश्वस्त एक मालिन से मैत्री करते हैं । मालिन कृष्णवर्णीय वस्त्रों में राजकुमारी से मिलकर यह संकेत करती है कि आपको अपने प्रेमी से रात्रि में मिलना है । प्रत्युत्तर में राजकुमारी एक पुष्पहार मालिन के गले में डालकर यह संकेत देती है कि रात्रि में उपवन में मिलन तय है । निर्धारित वेला में राजकुमार एवं राजकुमारी का मिलन होता है, और तीनों राजकुमार की राजधानी की ओर प्रस्थान करते हैं । शीघ्र ही राजा को सारी स्थिति का पता चलने पर उनका सेना सहित राजा पीछा किया जाता है । कुछ सैनिकों का वध राजकुमार एवम् न्यानसिंह राजा से पहुँचने से पहले ही कर देते है । अन्ततोगत्वा राजा भी वहाँ आ जाता है, किन्तु समीपस्थ तपस्वी गणों के द्वारा राजकुमार एवं राजकुमारी को तापस वेश में चमत्कारिक रूप में बदले जाने पर राजा उनको पहिचानने में असमर्थ होकर ईश्वरेच्छा गरीयसी मानकर पुन: अपनी राजधसनी लौट जाता है । राजकुमार एवं राजकुमारी अपने गन्तव्य पर जाकर सुख चैन से जीवन व्यतीत करते हैं ।

कथा कामरानी

वि. सं.१६९१ में प्रणीत यह कथा राजकुमार प्रीतमदास तथा रानी कामरानी की प्रणय कथा है । कथा के घटनाक्रमानुसार मुल्तानं नगर के राजकुमार प्रीतमदास के चार मित्रों में वैभवशाली सौदागर पुत्र, एक सुरंग खोदने का विशेषज्ञ, एक बढ़ई और एक माली था । पाँचों मित्र एक बार कामरूप नगर में राजकुमार के लिए सुयोग्य वधू की खोज में आते हैं । कामरूप में एक मन्दिर में स्थित सुन्दर नारी की मूर्त्ति को देखकर राजकुमार उसके प्रति समर्पित हो जाता है और अपने मित्रों से याचना करता है कि इसी स्त्री से मैं विवाह करूंगा, तुम लोग इसकी खोज करो । मूर्त्ति पर कामरानी नाम लिखा हुआ था । मित्रों ने राजकुमार को विविध युक्तियों से समझाया कि निश्चेतन मूर्त्ति में रति अयुक्तिसंगत है किन्तु राजकुमार भेदपरक दृष्टि खो चुका था और उसी मूर्त्ति रूपी नारी के सौन्दर्योपासना में खो गया था । चारों मित्रों की खोज के परिणामस्वरूप यह पता चला कि कामरानी नामक राजकुमारी को राजाराम नामक राजा बलपूर्वक ले आया है । राजकुमारी कामरानी कामरूप नगर से पचास योजन की दूरी पर स्थित हरिदास राजा की कन्या है । राजाराम ने उसको एक ऊँचे महल में कैद कर रखा है और उसे मनाने का प्रयास कर रहा है, लेकिन कामरानी ने राजाराम के प्रणय निवेदन को ठुकरा दिया है । पांचों मित्र राजाराम के नगर में आकर मालिन से मैत्री करते हैं । मालिन के सुप्रयासों तथा चारों मित्रों की योजनाओं से कामरानी एवं राजकुमार प्रीतमदास का मिलन होता है और राजकुमार कामरानी को लेकर उसके पिता हरिदास के पास पहुँचता है । राजा हरिदास कामरानी का विवाह राजकुमार के साथ तथा उसके अन्य मित्रों का भी विवाह सुन्दर कन्याओं से करवा लेते हैं । अन्त में राजा हरिदास राजकुमार को सम्पूर्ण राज्य सौंपकर वन को प्रस्थान कर जाते हैं ।

कथा तमीम अनसारी

वि. सं. १७०२ में रचित इस कथा का प्रतिपाद्य इस प्रकार है कि मदीना निवासी तमीम अनसारी अपनी बीवी के व्यवहार से क्रुद्ध होकर घर से बाहर निकल पड़ता है तो एक प्रेत द्वारा उठा लिया जाता है । प्रेत उसे मानव द्वारा ४००० वर्षों में पूरा करने योग्य दूरी वाले एक नगर में पटक देता है । वहाँ उसकी मुलाकात तुर्क सेनापति शाहपदी से होती है । शाहपदी अनसारी को मदीना जैसे पवित्र स्थल से आया जानकर अपने आपको कृतकृत्य मानता है क्योंकि मदीना हजरत मोहम्मद साहब का स्थल है । अत: अनसारी का दर्शन नबी के दर्शन जैसा है । शाहपदी के पुत्रों को अनसारी ने कुरान पढाई तो उसने प्रसन्न होकर कहा कि मैं तुझे मदीना पहुँचा दूंगा । शाहपदी ने इस निमित एक प्रेत को आदेश दे दिया । प्रेत उसे मारने की नियत से उड़ा कर ले गया लेकिन बीच में ही नष्ट हो गया । इसके बाद अनसारी के सामने कई हीरे-मोती आदि के प्रलोभन आते हैं किन्तु वो माया से विचलित नहीं होता । अन्त में एक महापुरूष के प्रभाव से

बादल उसे मदीना ले आते हैं । इसी बीच उसकी पत्नी मुस्लिम धर्माचार्यों की इजाजत से किसी अन्य पुरूष से विवाह कर लेती है किन्तु अनसारी को उसकी पत्नी व बच्चे पुन: उमर अमीर के हस्तक्षेप से प्राप्त हो जाते हैं ।

समालोचना

कथा रूपमंजरी प्रणय कथानक उषा अनिरूद्ध के पौराणिक कथानक से प्रभावित लगता है जिसमें उषा को कामरूप अनिरूद्ध स्वप्न में दिखाई देता है और वो उसे अपने पास अपनी सहेली चित्रलेखा के जादुई करिश्मे से बुला लेती है । सूफी प्रेमाख्यान मंझन कृत मधुमालती में भी मधु एवं मधुमालती को मिलाने की ऐसी ही संयोजना बनाई गई है । रूपमंजरी राजकुमार प्रीतमदास को स्वप्न में दिखाई देती है और अपना स्थल संकेतित रूप में बता देती है । यह दृष्टिकोण सूफी एवं असूफी प्रेमाख्यानों में समान रूप से दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि पद्मावत के प्रणेता जायसी ने भी उषा अनिरूद्ध की कथा का उल्लेख किया है । सूफी काव्यों में गुरू का बड़ा ही महत्त्व है, और उसकी कृपा से कई सिद्धियां प्राप्त होते बताया गया है । राजकुमार प्रीतमदास को प्रेमिका की प्राप्ति वापस गुरू की कृपा से ही हुई थी अन्यथा छद्मवेष के अभाव में वो या तो राजा द्वारा मारा जाता अथवा कैद कर लिया जाता । रूपमंजरी में विरह का परिपाक किसी भी दृष्टि से दिखाई नहीं देता क्योंकि प्रेयसी उन्हें सामान्य से प्रयत्न से ही प्राप्त हो जाती है ।

विवाह पूर्व का विरहाग्नि चित्रण यद्यपि सीमित शब्दों में है, तथापि जगह-जगह उपमा, अनन्वय आदि अलंकारों के प्रयोग से रस को पोषित किया गया है यथा चौपई संख्या १३ (२) में अनन्य सुन्दरी रूपमंजरी के लिए उपमान के अभाव में अनन्वय अलंकार का प्रयोग है । रूपमंजरी के नख शिख सौन्दर्य का वर्णन भी १३ (२) से १४ वें दोहे तक किया गया है । विरहावस्था में राजकुमार त्राटक समाधि की स्थिति में आ जाता है । यह स्थिति कवि के वेदान्तपरक अद्वैत ज्ञान का प्रतिपादन करती है ।

कथा कामरानी में विरह का चित्रण नायक में दिखाया गया है जो कामरानी की मूर्त्ति से ही उसके प्रेमपाश में बंध जाता है जबकि उसे यह ज्ञात ही नहीं है कि मूर्त्तिवाली नारी वास्तव में इस धरातल में है अथवा नहीं । सूफी प्रेमाख्यानों में विरह की तड़पन अधिक पुरूष में ही होती है यथा ज्ञानदीप की देवयानी एवम् युसुफ जुलेखा की जुलेखा को छोड़कर विरह की तीव्र स्थिति नायकों में चित्रित की गई है । मृगावती का राजकुमार, पद्मावत का रतनसेन, मधुमालती का मनोहर एवं चित्रावलि का सुजान विरह में तप्त चित्रित किये गये हैं । कामरानी को प्राप्त करने हेतु राजकुमार द्वारा जो विविध उपाय व साधना की गई है व सूफी काव्यों की भावना के अनुरूप हैं जहाँ साधक का परमात्मा से मिलन होकर दोनों विश्वात्मा बन जाते हैं । विवाह पूर्व संयोग का खुला चित्रण न करना भारतीय मान्यताओं के आदर्श के अनुरूप है । राजकुमार चाहता तो कामरानी उसे उपलब्ध थी किन्तु विवाहपूर्व उसने संयोग

करने से मना कर दिया जिससे काव्य का धरातल ऊँचा हो गया । यद्यपि ढोला मारू, छिताईवार्ता, सदयवत्स सावलिंगा, माधवानल कामकन्दला के अलावा संस्कृत के कुमारसंभव व नैषध महाकाव्य में भी संयोग का चित्रण है।

कथा तमीम अनसारी का नायक तमीम अनसारी अकारण ही पत्नी पर क्रोधित होकर घर से बाहर चला जाता है जो कुरान के पवित्र सिद्धान्तों का उल्लंघन है, क्योंकि पुत्र कलत्रादि की परवरिश का जिम्मा परिवार के मुखिया का होता है । कृष्णवर्णीय प्रेत अज्ञानता का प्रतीक है जिसमें काफी समय तक तमीम अनसारी डूबा रहता है । यही कारण है कि अपनी ही पत्नी से पुनर्मिलन हेतु वो अनेकानेक कठिनाईयां झेलता है । अपनी गलती का ज्ञान हो जाने पर अनसारी का मन एकदम पाक हो जाता है । हीरे-मोती एवं स्वर्णादि का लोभ बार-बार उसके सामने आता है, लेकिन वह इससे तनिक भी विचलित नहीं होता है । उसका एक मात्र लक्ष्य मदीना पहुँचकर पुत्र कलत्रादि से मिलना है और अनेक विध उपाय कर वह वहाँ पहुँच जाता है । साधना का पंथ चाहे कितना ही लम्बा क्यों न हो, साधक अगर उसे पार करना चाहे तो कुछ भी असंभव नहीं है । यही कुछ कथानक के माध्यम से जान कवि कहना चाहता है । इसके अतिरिक्त जगह-जगह कुरान की पवित्रता एवं इस्लाम की महानता भी कवि ने दिखाई है ।

तुर्क सेना के सेनापति के लिए अनसारी मात्र इसलिए पूज्य हो गया कि वह मुहम्मद साहब के पवित्र स्थल मदीना से आया था । कुरान के अध्ययन से भूतप्रेतों पर कब्जा किया जा सकता है, यह भी धर्मग्रन्थ पर मात्र अतिश्रद्धा का ही परिणाम हो सकता है । इसके अतिरिक्त काव्य अनेक अलौकिक तत्त्वों से भरा पड़ा है जिन पर विश्वास करना मुश्किल है ।

डॉ. हरीश के मतानुसार ये तीनों ही कृतियां प्राकृत प्रेमपरक अथवा सहजप्रेमपरक काको के अन्तर्गत हैं, उन के अनुसार विवाहपूर्व एवं पश्चाद्वर्ती प्रेमपरिपाक ऐसे आख्यानों में होता है । मेरे विनम्रमत में कथारूपमंजरी एवं कथाकामरानी के विषय में डॉ. हरीश का मत सटीक एवं युक्तियुक्त है किन्तु कथातमीम अनसारी को कदापि प्राकृतप्रेमाख्यान्तर्गत परिगणित करना समीचीन नहीं हैं । संभवत: विद्वद्वर डॉ. हरीश ने इस कृति को नहीं पढा होगा क्योंकि तमीम अनसारी का नायक पूर्व से ही विवाहित है । अपनी ही पत्नी द्वारा उपेक्षित होकर गृहत्याग करते ही तमस के प्रतीक प्रेतों द्वारा पकड़ लिया जाता है । सारे काव्य में अनसारी की पुन: पुत्रकलत्रादि से मिलने की जबरदस्त तड़प दृष्टिगोचर होती है । अगर सूफी दृष्टिकोण से विश्लेषण करे तो वहां प्रेम एकपक्षीय नही होता है । आत्मा परमात्मा मिलकर विश्वात्मा बनने की एक पुरजोर कोशिश वहां नजर आती है । इसके विपरीत तमीम अनसारी की पत्नी का एक मात्र साध्य अन्नवस्त्रादि की येन केन प्रकारेण प्राप्ति है । अनसारी की उसे कतई आवश्यकता नहीं है । यही कारण है कि वो निर्धारित अवधि में अपना पुनर्विवाह भी रचा लेती है ताकि ठीक ढंग से भरणपोषण हो सके । ऐसी दशा में इस काव्य को न तो सहजप्रेमपरक, न ही स्वेच्छामूलक और न ही शीलप्रधान काव्यों में परिगणित करना ठीक है ।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मत में जान कदाचिद् पहले कवि हैं और बाद में उन्हें सूफी कहना ठीक रहेगा । इनकी जो प्रेम गाथाएं सूफी प्रेम गाथाओं के अन्तर्गत किसी प्रकार आ सकती हैं उनमें कुछ साधारण लक्षणों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । ये कर्त्ता की स्तुति करते हैं, मुहम्मद के गुण गाते हैं तथा कभी-कभी उनके ४ साथियों की भी चर्चा करते हैं । ये शाहे वक्त का नामाल्लेख कर देते हैं व अपने पीर का भी परिचय देते हैं । श्री चतुर्वेदी की दृष्टि में ये द्रुतगामी कवि हैं । इन्हें लेखन के लिए न तो परिश्रम करना पड़ा और न ही सोचना पड़ा, फिर भी इनकी रचनाओं को कोरी तुकबन्दी नहीं कहा जा सकता, कहीं-कहीं सरसता भी है । डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय ने कथा कनकावति, कामलता, मधुकर मालती, रतनावति एवं छीता आदि को सूफी प्रेमाख्यानों में सम्मिलित किया है, हालांकि उनकी दृष्टि में ये प्रेमाख्यान भी सूफी दर्शन से रहित हैं ।

जानकवि प्रारम्भ में खुदा, रसूल, हजरत मुहम्मद, चार दोस्त तथा शाहे वक्त की स्तुति करते हैं । ये विशेषताएं केवल सूफी प्रेमाख्यानों के अलावा फारसी की मसनवियों में भी मिलती हैं। फिरदौसी के शाहनामा में भी उपर्युक्त बातों का समावेश है । मात्र मसनवी शैली के अनुसरण से ही जान को सूफी कवि कहना ठीक नहीं है । उसकी रचनाओं में जायसी, मंझन, उसमान एवं शेखनवी जैसा न तो पांडित्य है और न ही कथानकों एवं चरित्रों का ढंग से विकास हुआ है ।

जो भी हो अगर सत्यान्वेषण का दुस्साहस किया जावे तो मात्र १-२ रचनाओं के आधार पर किसी कवि का सर्वांग आंकलन करना थोड़ी त्वरा का कार्य लगता है । ७५ से अधिक संख्या में रचित कृतियां काव्य, रस, काव्यशास्त्र संगीत, आयुर्वेद, इतिहास, भूगोल, कामशास्त्र, रत्नपरीक्षा आदि विविध विषयों में विभाजित हैं । ७० साल के अल्प जीवन में इतनी विपुल साहित्य साधना, वो भी ऐसे मध्यकालीन नवाब से जिसका समग्र जीवन का एक बड़ा हिस्सा युद्ध एवं प्रशासन में व्यतीत हुआ हो, क्या वास्तव में संभव है ! मैं जानता हूँ कि प्रत्युत्तर नकारात्मक ही होना चाहिए। अगर यह सच है तो हमारा हिन्दी साहित्य का इतिहास इस साधक के प्रति मौन क्यों हैं ? हिन्दी साहित्य के बीसों इतिहासों में मात्र १-२ के अलावा कहीं भी इस कवि का नाम तक नहीं है । अगर भूले भटके किसी ने नाम भी लिया तो कवि की कमियों की और ही इंगित किया है । हिन्दी के स्रष्टाओं से अपेक्षा है कि इस खेदजनक स्थिति से शीघ्र ही परिमाण पाने का प्रयत्न करेंगे ।

ओ३म्प्रकाश शर्मा
वरिष्ठ शोध सहायक
एवम् कार्यालयाध्यक्ष

कवि जान कृत
कथा 'रूपमंजरी'

चौपई॥१॥ परगट करौं जीह जप नाद। अखिल अगोचर सुमिरौं आद ।
वाकौ भेदु न काहू पायौ। अगम रह्यौ तो अगम कहायौ ॥

सर्वप्रथम मैं अदृश्य इन्द्रियों से दिखाई देने वाले सर्वशक्तिमान् का स्मरण करता हूँ, और मैं उनको जप साधना के साथ नाद के रूप में प्रकाशित करता हूँ। उस परमशक्ति का सार्वकालिक भेद किसी ने भी पूर्णत: प्राप्त नहीं किया है। वह सर्वशक्तिमान् मन, वाणी एवं इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं आ सका है, अत: उसे अगम नाम दिया गया है।

करता भेदु न वेद बतायौ । निगम रह्यो तौ निगम कहायौ ।
सपुनै कौ करि प्रगट दिखैहै। प्रगटते सपुनौ ह्वै जैहै॥

उस परमशक्ति का भेद वेद ने भी पूर्णत: प्रकाशित नहीं किया है। निखिल ज्ञान से भी परे है, 'नेति' 'नेति' बताया गया है। निगम शास्त्र एवं आगम-तन्त्र भी उस निगम का वास्तविक प्रकाशन नहीं कर सके हैं। स्वप्न में नवीन किसी रूप में दिखा हो तो प्रगट भी हो जाता है, और यदि कोई रूप - रंग आदि के साथ प्रगट है तो वह तिरोहित होकर पुन: अदृश्य होकर स्वप्न गम्य हो जाता है।

जो किनों चाहत करतार। तत छिन होत न लागत बार ॥

वह परम नियामक-जगतनिर्माणकर्त्ता जो भी करना चाहता है उसके होने में विलम्ब नहीं होता है, वह उसी क्षण हो जाता है।

दोहा॥१॥ अलख निरंजन पूजिहै, महापुरुष सो होइ ।
ताकौं पूजै सर्ब जगु, नाहिंन पूजै कोइ॥

निराकार अदृश्य एवं सभी को सुखी करने वाले सर्वशक्तिमान् की जो व्यक्ति पूजा-सपर्या करता है, वह महापुरुष ही हो सकता है, ऐसे महापुरुष का समस्त जगत् पूजन करता है, फिर भी कोई एक-दो व्यक्ति ऐसे हो सकते हैं जो महापुरुष की भी पूजा नहीं करते हों।

चौपई॥२॥ नबी मुहमद उनतें पाछैं। निस दिनु सुमिरत हौं मनु आछैं ।
जो करतार नबी फुरमायौ। सो सब नबी हमैं समुझायौ॥

परम शक्तिमान् निराकार परमेश्वर (अल्लाह) का स्मरण करने के पश्चात् सतत रात और दिन के समय में अच्छे मन से (पाखण्डपूर्वक तो नहीं) नबी हज़रत मोहम्मद साहब का स्मरण करता हूँ। विधाता ने जो ज्ञान मोहम्मद

साहब को आदेश के रूप में प्रकट किया, उसी आदेशपरक उपदेश को हज़रत मोहम्मद साहब ने अपने शुद्ध आचरण के उदाहरणों के द्वारा दुनिया के रहने वालों को सरल विधि से समझाया है । वे ही अल्लाह के संदेश हमें देने वाले देवदूत हैं।

संमझ बूझि हम भये अबूझ । मुष द्रिग देखत हिये अबूझ ।
पूजि किये अपराध बिगार । पूजे नाहिं नबी करतार ।।

हम सब लोग ज्ञान तो प्राप्त कर चुके हैं किन्तु फिर भी अज्ञानता से भरे आचरण कर रहे हैं । मुख से उपदेश श्रवण करके भी, और दृष्टि से देखते हुये भी, हृदय की अनुभूतियों के अनुरूप मनन, ध्यान, धारणा, शक्ति और समाधि के अभाव के कारण सत्य का यथार्थ अनुभव प्राप्त करने में असफल हो जाते हैं । ईश्वर को पूजते भी हैं किन्तु आचरण अच्छा नहीं करने के कारण हम अपराध कर रहे हैं । सच्चे अर्थों में हम अपने नबी का पूजन नहीं कर रहे हैं ।

करनीं करनी किये समाध । अनकरनी करनी अपराध ।।

जो आचरण करने योग्य है, उन्हें करना तो नबी की सच्ची पूजा है किन्तु जो कार्य मनुष्य के लिये ग्राह्य नहीं है उनको करने पर अपराध का संकलन होता है ।

दोहा ।।२।।
अन करनीं चित सौं करत, ना करनी सौं हेत ।
मन की कालिम ना मिटत, भये बार हूं सेत ।।

मनुष्य अपने चित्त को दूषित रखकर जो बुरे कार्यो को करने का प्रयास करते हैं, वे अकर्म से अपना हित होना मान लेते हैं, जो कि वास्तव में ग्राह्य कर्म नहीं है । यद्यपि मनुष्य अवस्था में वृद्ध भी हो चुके हों किन्तु प्राय: अधिकांश लोगों के मन की कालिमा (क्षुद्रता या वासनाओं के प्रति मोह) दूर नहीं होती है ।

चौपई ।।३।।
कहत जान यहु सुलिप कहानी । स्त्रवंननि सुनी तबहिं मन मानी ।
नई जुगति यामैं बहु लही । बांधि चौपई दोहा कही ।।

जान कवि कहते हैं कि मैं बहुत ही संक्षिप्त रूप में यह कहानी काव्य के रूप में रचकर कह रहा हूँ । मैंने इस प्रकार की कथा अनेक बार अपने कानों से सुनी है । इस कथा से मेरा हृदय अति प्रभावित हुआ है, इस कथा को मैं हितकारी समझता हूँ । इस कथा को मैंने कथन की नई युक्तियों से पूर्ण शैली के साथ काव्य में प्रस्तुत किया है । इस काव्य कहानी में चौपई और दोहा - छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

संवत सोरह सै पच्यासी । अगहन मास कथा प्रकासी ।
अठ्यासी दोहे चौपई । सकल कथा संपूरन भई ।।

संवत् सोलह सौ पिच्यासी (सन् 1628 ई.) अगहन मास में यह कथा प्रकाशित हुई । यह काव्य रचना

अठासी दोहे और चौपई के योग से सम्पूर्ण हुई है ।

नीकी है सु पढ़ौ करि प्यार । जहां खोटि सो लेहु संवार ॥

यह कथा अच्छी है अत: पाठक मित्रों से अनुरोध है कि इस कथा को प्यार से पढ़ा करें । यह भी विनम्र निवेदन है कि कथा में, छन्द में, कोई शब्द प्रयोग में त्रुटि हो गई हो तो उसे सुधी पाठक जन स्वयं अपनी मति के अनुसार सुधार लें ।

दोहा ॥३॥ बहुत उतावर मैं करी, जौ कहुँ वां है खोर ।
करियहु बरनन मोड़ के, यहै बीनती मोर ॥

यह कथा मैंने बहुत उतावली में अत्यन्त शीघ्र समय में रची है । इस सम्बन्ध में मेरी विनती है कि यदि कथा के **कथ्य वर्णन में** कोई बात रस पूर्ति की दृष्टि से छूट गई हो तो कृपया अपनी ओर से संशोधन करके वर्णन की त्रुटि को भी सुधारने का कष्ट करें ।

चौपई ॥४॥ सुनहु कांन दै चातुर गुंनी । कथा पुरातन एसै सुनी ।
हसतीमल राजा कौ नांव । हथनांपुरी रहन कौ ठांव ॥

गुणवन्त सुधीजन ध्यानपूर्वक सुनें कि यह कथा मैंने - अग्रलिखित प्रकार से पुरातन परम्परा में कही गई सुनी है -एक राजा हस्तीमल नाम का था । उसका निवास हस्तिनापुर नामक स्थान पर था ।

तिन्ह राजा अंनगंन तिय आनी । परभावती पाट की रानी ।
करता लछ्छी दही अनंत । कांम कलोल करत सुख संत ॥

राजा हस्तीमल ने अनेक सुन्दर स्त्रियों को ले आकर उनसे विवाह रचाये । उन समस्त सुन्दरियों में से एक प्रभावती रानी को राजा हस्तीमल ने अपनी पटरानी बना लिया था । विधाता ने राजा को अनन्त धन दिया था । वह राजा मन चाही रीति से विलासमय जीवन का भोग प्राप्त कर रहा था ।

रैन दिनां सुत माँगैं दोऊ । और चिंत मन मैं नहिं कोऊ ॥

वे राजा और रानी दोनों ही विधाता से एक ही चाह किया करते थे कि परमात्मा उन्हें एक पुत्र दे दें । इसके अतिरिक्त और कोई चाह उन्हें नहीं थी ।

दोहा ॥४॥ धरम नीत हीं चलत है, दान पुंन सौं कांम ।
अंगज अंगज जप - जपहिं, बीतत आठौ जाम ॥

वह राजा धर्म पूर्ण नीति के साथ राज्य का कार्य करता था । राजा दान एवं पुण्यादि के अनेक कार्य करता था। वह राजा आठों प्रहर निरन्तर पुत्र की कामना से समय व्यतीत करता था ।

चौपई ।।५।। होइ दयाल दई सुत दयौ । राजा रानी आनन्द भयौ ।
सात सखी मिलि चौक पुरायौ । मंगल चार सोहिलौ गायौ ।।

विधाता ने कृपा करके उन राजा और रानी को आनन्दित करते हुए पुत्र दे दिया । राजा के घर सांस्कृतिक विधि - विधान से पुत्र जन्म पर समस्त मंगल कार्य पूर्ण किये गये । सात सखियों ने मिलकर चौक पुराया (मांडना सजाया) और मंगलाचार के 'सोहिल गीतों' का गायन किया गया ।

पंच सबद अति रंग मैं बाजैं । दान करत राजा जू राजैं ।
देंषंन लगंन ज्योतषी आये । लगन देषि नां अंग समाये ।।

पाँच शब्द-कीर्तन अति साज-सज्जा पूर्ण विधि से महोत्सव के रूप में सम्पन्न किये गये । दान करने से राजा की शोभा में वृद्धि हुई । राजपुत्र के जन्म की लग्न एवं जन्म-समय-फल आदि की गणना करने के लिए अच्छे-अच्छे ज्योतिषी आये । उन्होंने पुत्र जन्म की लग्न देखकर शुभकारक फल की भविष्यवाणी उद्घाटित की, जिससे अमित महोत्सव मनाया गया । सभी जन अति प्रफुल्लित हुये ।

ग्यांन सिंघ कछु ग्यांन जनाय । ह्वैहै परगट सबहि गवायौ ।।

ज्योतिषियों ने राजकुँवर का नाम सोच विचार कर ग्यानसिंह रखा । इस ग्यानसिंह के ग्यानपूर्ण शुभ चरित्र का सभी प्रकार से लोकहितकारी रूप में पूर्णत: गायन किया गया ।

दोहा ।।५।। रानी निसदिन चौंप सौं, दूध पिवावत आहि ।
पल-पल मैं बढ़िवौ करै, यहै जीय मैं चाहि ।।

रानी अत्यन्त उमंग के साथ राजकुँवर को दूध पिलाती थी । उसके हृदय में यही चाह रहती थी कि मेरा पुत्र प्रति पल बड़ा होता चला जाये ।

चौपई ।।६।। ग्यानसिंघ कछु ग्यांन जनायौ । वै राजैं चटसार बिठायौ ।
येक बार जो गुरु पढ़ावै । भूलत ना सिख सुनि सुख पावै ।।

राजकुमार ज्ञानसिंह ने जब समझदारी की बातें करना प्रकट कर दिया, तब राजा ने कुँवर को पढ़ने के लिए शाला में बैठा दिया । गुरु उसे एक बार जो कुछ पढ़ा देता था, उसे वह शिष्य राजकुमार भूलता नहीं था । गुरु स्वयं द्वारा पढ़ाये गये पाठ को शिष्य के मुख से ज्यों का त्यों सुनकर अति प्रसन्न होते थे ।

जेते ग्रन्थ ग्यांन के आहि । ते सब पढ़े कुँवर चितु चाहि ।
गुरू जो बात सैन में कहैं। बहुरि न पूछै देखत लहै ॥

जितने भी ज्ञान के ग्रन्थ थे, राजकुमार ने उन सबको मन की चाह के साथ पढ़ लिया । गुरू जो भी शिक्षा उसे संकेत से भी देते थे, तो भी वह कुँवर उस शिक्षा को प्राप्त कर लेता था । वह गुरू से पाठ को दुबारा नहीं पूछता था ।

ग्यांनसिंघ की बुधि की बात। रसना येक कही ना जात ॥

राजकुमार ज्ञानसिंह की बुद्धि का वर्णन एक जीभ से करना संभव नहीं है ।

दोहा ॥६॥ गुरु-सिष अन्तर ना रह्यौ, भयौ येक सम ग्यांन ।
सिष ही तें गुरु होत है, सब कोऊ कहि जांन ॥

ज्ञानसिंह ने अपने गुरु के सदृश ज्ञान प्राप्त कर लिया । जान कवि कहते हैं कि शिष्य रहे व्यक्ति ही ज्ञानवान होकर गुरु बन जाते हैं ।

चौपई ॥७॥ ग्यानसिंघ जब तरनौं भयौ । व़ाकौ ग्यांन सकल जगु छयौ ।
तासौं हेत जु ग्यानी होइ । निर बुधि सौं बोलत ना कोइ ॥

राजकुँवर ज्ञानसिंह जब तरुण अवस्था में पहुँच गया तब उसके ज्ञान की प्रशंसा समस्त जग में प्रकाशित होने लगी । ज्ञानी व्यक्ति सभी की समस्याओं को सुलझाकर सभी का हित साधन करते हैं, अत: ज्ञानीजनों का आदर सब कोई करता है । मूर्ख का आदर कोई नहीं करता है ।

चातुर चातुर सौं अनुरागै । मूरिष मूरिष कैं रंग पागै ।
चातुर मूरिष बनैं न बात । होहि न संग द्यौंस पुनि राति ॥

जिन मनुष्यों में बुद्धि-विवेक होता है वे बुद्धिमानों से प्रेम करते हैं । मूर्खजन अज्ञानता के कार्यों को करने वाले लोगों से प्रेम करते हैं । योग्य व्यक्तियों को मूर्ख व्यक्तियों से मिलकर प्रसन्नता नहीं होती है । मूर्ख व योग्य व्यक्ति में रात और दिन के समान भेद होता है । जिस प्रकार रात और दिन एक साथ नहीं रह सकते हैं, उसी प्रकार एक पूर्णत: योग्य व्यक्ति पूर्णत: मूर्ख व्यक्ति के साथ नहीं रह सकता है ।

निस आवै तब दिन भजि जाइ । दिन आगै निस ना ठहराइ ॥

जब निशा आती है तब दिन को पलायन करना पड़ता है । इसी प्रकार जब दिन व्याप्त होता है उस समय निशा का अंधकार ठहर नहीं पाता है ।

दोहा ॥७॥ जैसी जाकी बूझ है, तैसी सूझत ताहि ।
मुगध मुगध सौं मगन है, चातुर चातुर चाहि ॥

जिसकी समझने की पात्रता जैसी होती है, उसे उसी प्रकार का कार्य हितप्रद लगता है । मूर्ख - मूर्खता के कार्यों को ग्रहण करने में मग्न होता है । बुद्धि-विवेक वाला व्यक्ति कष्ट सहकर भी विवेक से अनुमोदित कार्यों को करने के लिये उत्साहित रहता है या आनन्दित रहता है ।

चौपई ॥८॥ मानस येक रहत उहि गांव । न्यानसिंघ हौ ताकौ नांव ।
न्यानसिंघ है महा सु चेतु । ग्यानसिंघ कौ तासौं हेतु ॥

उसी गाँव में एक न्यानसिंह नाम का मनुष्य रहता था । न्यानसिंह अत्यन्त विवेकसम्पन्न व्यक्ति था । राजकुँवर ज्ञानसिंह को उससे प्रेम था ।

ग्यांन-न्यान में प्यार अपार । येक आन हैं दहुंवनि यार ।
निस बासुर येकै संग बितवैं । येक मतै नैननि ज्यौं चितवैं ॥

ज्ञानसिंह राजकुँवर और विवेकशाली न्यानसिंह में अपार प्रेम था । दोनों मित्र एक समान आत्मा धारण करते थे और उनके प्राण एक दूसरे से पुष्ट अथवा विकसित होते थे । वे रात-दिन एक साथ रहकर व्यतीत किया करते थे । वे अपनी-अपनी आँखों से परस्पर एक दूसरे की आँखों में झाँकते थे, तब उनमें समान भाव समान मत व विश्वास दिखाई देता था ।

मिंत व़है जासौं मन मेल । और हेतु है झूंठे खेल ॥

जिससे मन मिले वही सच्चे अर्थों में मित्र होता है । किसी अन्य प्रयोजनवश साथी बनना झूठा खेल समझना चाहिए । वह स्थाई मित्रता का आधायक नहीं होता जिससे कि अल्प समय के लिए स्वार्थवश संग ग्रहण किया जाये ।

दोहा ॥८॥ कोऊ सुष पावत नही, मुष कै झूंठै प्यार ।
दहूं बोरि तें मन मिलै, जानहु सांचे यार ॥

मुख से झूठा प्यार प्रकाशित करके मित्रता साधने में सच्चा सुख उत्पन्न नहीं होता है । यदि दो लोगों के मन दोनों ओर से समान रूप से मेल खाते हों तो उनकी मित्रता सच्ची है ।

चौपई॥९॥ कुंवर भयौ जा बन मैं मंत । कौतिग देषै हसै अनंत ।
तकै झरोखैं बैठो ग्यांन । हाथी दौरनि सौं बहु प्रान ॥

एक समय की बात है कि वह राजकुमार आखेट (शिकार) के लिए वन में गया। वह राजकुमार ज्ञानसिंह वन में जाकर वन्य प्राणियों की क्रीड़ाओं को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था। वह वन में स्थापित शिविर के कक्ष के झरोखे से अपने शिकारी दल के द्वारा की जाने वाली आखेट की मनोरम क्रियाओं का अवलोकन कर रहा था। वहाँ शिकार में हाथी बड़ी जानदार दौड़ लगा रहे थे।

घोरे कूदत म्रिगा सुभाइ। मूरत मैने अेन पग बाइ।
मल्ल ऊंट, गज म्रिग लरावै। पंछिन पाछैं बाज उड़ावै ॥

घोड़े मृगों के सदृश तीव्र वेग से उछल कर दौड़ रहे थे। वे घोड़े अपनी स्वाभाविक मूर्त्ति की छबि रूप में नहीं दिखाई दे रहे थे, उनके पैर सदैव हवा में उड़ते ही दिखाई पड़ रहे थे। वहाँ वन में आखेट के लिए शिविर लगाकर रह रहे राजकुमार विविध प्रकार से मनोरंजन प्राप्त कर रहे थे - उनके शिकारी दल के प्रधान लोग विभिन्न पहलवानों की कुश्तियाँ, विभिन्न जोड़ के पहलवानों से करवाते थे। ऊँटों से लड़ाई करवाते थे। हाथियों की दूसरे हाथियों से लड़ाई करवाते थे। अन्य जीवों (मृगों) की उनकी जाति के जीवों से लड़ाई करवाते थे। इसी प्रकार पक्षियों को पकड़ने के लिए बाज पक्षियों के कौशल दिखाये जा रहे थे।

कबहूं देखत विद्यावान। कुंजर-सिंघ लरावै आंन ॥

कभी - कभी विभिन्न कलाओं के पारंगत विद्यावतों के गायन, नृत्य, काव्य पाठ और जादूगरी आदि के कौशल दिखाये जा रहे थे।

दोहा।।९।। बहुत अहेरैं षेलि है, ग्यानसिंघ पुनि न्यान।
म्रिगराज म्रिग मारि हैं, षरहा पकरत स्वान ॥

राजकुमार ज्ञानसिंह और उसका मित्र न्यानसिंह दोनों कई प्रकार के आखेट - क्रीड़ा के कौशलों का आनन्द प्राप्त करते रहते थे। आखेट के समय कभी सिंह - मृगों आदि पशुओं को मारने का कौशल देखकर आनन्दित होते थे। कभी शिकारी कुत्ते खरगोशों को पकड़ने का कौशल दिखाकर उन्हें आनन्दित करते थे।

चौपई॥१०॥ येक द्यौंस बैठे जुग मिंत। हंसि हंसि बातें करत निचंत।
पिंगल पुनि व्याकरन बषानहिं। कबहू भारथ अरथ सुख मांनहि ॥

एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। वे छंदों के विभिन्न प्रकारों पर चर्चा करते थे, कभी व्याकरण की शुद्धता पर चर्चा करते थे और कभी महाभारत कथा के अर्थ पर चर्चा करके सुख प्राप्त करते थे।

राम बिराम गये सुष माहिं। ग्यान-न्यान गुन सुष कहे न जाहिं।
कबहूं नाद - भेदु प्रगटावहिं। कवितन अतन करहिं सुनावहि ॥

कभी चर्चा का विषय यह होता था कि मर्यादा पुरुषोत्तम राजा राम किस किस प्रकार से न्यायपूर्वक लोक व्यवस्था करके इस लोक को सुधार ओर सुखी करके परलोक सिधार गये । ज्ञानसिंह और न्यानसिंह गुणों के विकास के प्रयत्नपूर्वक अभ्यासों के कौशल में जो सुख प्राप्त करते थे उनका वर्णन सहज सम्भव नहीं है । कभी वे नांद अर्थात् ध्वनि के भेद को प्रकट करते थे । कविताओं को भांति - भांति से कहकर सुनाते थे ।

कभूं प्रहेली कभूं कहानी । यह बिधि आधीं रैंन बिहानी ॥

कभी वे कहानियों में सुख प्राप्त करते थे और कभी गूढ़ार्थ वाली पहेलियों के अर्थ के प्रकाशन में सुख प्राप्त करते थे । इसी विधि से वे आधी रात बिता देते थे ।

दोहा ॥१०॥ ग्यान अंबु ते जान कहिं, अबुजु मन बिकसंत ।
कवित सुबास हुलास सौ, मन-मोहन निकसंत ॥

जान कवि कहते हैं, उनकी क्रियाओं के अभ्यास ऐसे थे कि ज्ञान रूप जल में ऐसा सदाशय सरोवर आधार बना कि मनरूपी अंबुज (कमल) खिलता था । अर्थात् कुण्डलिनी खुल गई थी । (यौगिक क्रियाओं का ज्ञान दृष्टिगोचर होता है । श्रेष्ठ कविता के सुबास से जो अमृत प्रस्रवण हुआ करता था, उससे मन मोहन विकसित होता था, अर्थात् सुषुम्ना में अमृत-आनन्द रस वर्षण होता था । वस्तुत: षट्दल कमल के खिलने पर सहस्त्रधार कमल में अमृत वर्षण होता था । नाद उत्पन्न होता था ।

चौपई ॥११॥ निद्र पूर भई द्रिग माँहीं । कोऊ कहूं वां जागत नाहीं ॥

नयनों में ही समाधि के कारण नींद पूरी हो जाती थी । वे उस समय योग समाधि की दशा में लीन हो जाते थे और प्रत्यक्षत: जागृत नहीं रहते थे ।

मिली पलका सब निंद्रा चाहि । नैन खुले सागर के आहि ।
मौंन गही को मुषहि न षोलत । बिनु घरियारन सुनिये बोलत ॥

पलक मूंदने से सांसारिक रीति की निद्रा चाहते थे किन्तु समाधिस्थ होकर कुण्डलिनी के जागरण से ज्ञान सागर में उनके ज्ञान के चक्षु खुले होते थे । मौन ग्रहण करके बाह्य रुप से मुख नहीं खोलते थे, बिना बाह्य प्रकार के घंटो के स्वर के ही वे मस्तक में आकाश ब्रह्म रंध्र में अमृत वर्षण में भंवर एवं घंटा स्वरूपी अनहद नाद सुना करते थे।

पंथी भये पंथ ते मंद । चलत स्वांस मग उडिगन चंद ॥
पौढ़ि रहे सब होई निसंक । बिनु तारा गिरपाइ परजंक ॥

इसी 'पंथ' पर चलकर वे बाह्यक्रिया के संचालन में मंद दृष्टिगोचर होते जाते थे । उनके इतनी निर्विकल्पक समाधि में लीन होते समय प्रारम्भ में ऐसी मूर्छना में होते कि वे मानों चाँद-तारे देख रहे हो । इसी आनन्द की अवस्था

में वे दोनों नि:शंक भाव से ब्रह्मरंध्र आकाश में (तारागण एवं चन्द्र के दर्शन का) अभिराम सुख-दर्शन करते थे। आँखों के तारे भले ही बंद न हो किन्तु वे समाधि के पलंग पर योग निद्रा में सो जाया करते थे।

दोहा॥११॥ ना को पीवै षात ना, पौढ़ि रहें पल मेल।
दीपग बाती षात है, अरू पीवत है तेल॥

योग-निद्रा की अवस्था में जीवन को समयावधि खाती नहीं है और आयु को भी समायावधि पीती नहीं है, अन्यथा सांसारिक प्रपंच में जीवन जीने वाले रागद्वेष युक्त मनुष्य की जीवन रूपी बाती को समय रूपी दीपक ज्वाला खाती है और आयु रूपी तेल को वह निद्रा पीती है।

चौपई।।१२॥ ग्यानसिंघ निंद्रा गह्यो आइ। चूरन मोह पलक दीलाई।
कै निंद्रा कौ पवन सुभाइ। दै है पलक कपाट मिलाई॥

तत्पश्चात् राजकुमार ज्ञानसिंह को निद्रा ने अपने वशीभूत कर लिया। मोह-मूर्छा रूपी चूरन उसकी पलकों पर बिछा दिया। निद्रा का स्वभाव पवन सदृश होता है, जिस प्रकार पवन द्वार के किवाड़ों को अपने जोर से मिला देती है, उसी प्रकार निद्रा ने आँखों की पलकों के पटों को मिला दिया।

कै निंद्रा छत्रपति कहावै। पाटंबर पल द्रिगु पहिरावै।
कै निंद्रा छबिवत कहावै। डिसट् परत तां वरसी आवै॥

निद्रा तो छत्रपति के राज सा सुख दिलाती है। नेनों को सुन्दर रेशमी वस्त्र पहनाकर बंद कर देती है। निन्द्रा तो अपूर्व सुन्दर दृश्य दिखाने वाली होती है अथवा निद्रा शोभा धारण कराने वाली होती है। दृष्टि बंद होने पर मूर्च्छा मोह आच्छादित हो जाता है। जहाँ भी मानसिक दृष्टि संचित भावों पर पड़ती है, अति उत्तम दृश्य दिखाती है।

निंद्रा व मदन कि है मद अंग। द्रिग मगु पैढ भिदे अंग अंग॥

निद्रा में मदनदेव (कामदेव) का मानसिक प्रभाव होने पर कामदेव अंगो की क्रियाओं में व्याप्त हो जाता है। निद्रा में दृष्टिगोचर होकर कामदेव के अनुसरण करने वाले दृश्यों के प्रभाववश, मद अंग-अंग में व्याप्त हो जाता है।

दोहा॥१२॥ कै निंद्रा छत्रपति है, चिंता रहे न आन।
कै निंद्रा है बावरी, रहे न सुधि-बुधि ग्यांन॥

निद्रा के सुखमय प्रभाव में अन्य कोई चिन्ता तो नहीं रहती है। निद्रा तो बावला बना देती है। ऐसी निद्रा की अवस्था में राजकुमार अपना बुद्धि-विवेक भूला हुआ था।

चौपई ॥१३॥ सौवतु सपनौ कुँवर निहार्‌यो । परगट ही करि हियै बिचारयौ ।
निरषी येक छबीली नारी । जो उपिमा दीजै सो गारी ॥

सोते हुए कुँवर ज्ञानसिंह ने सपने में जब निहारना प्रारम्भ किया तब उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह प्रत्यक्ष देखकर ही हृदय में सब कुछ अनुभव कर रहा हो । इस समय उसने चमक-दमक युक्त एक ऐसी सुन्दर नारी देखी कि जिसकी सद्दशता किसी अन्य से बताकर उपमान कहने से उसके रूप की निंदा होती थी ।

ऊब्रंन ते आधन लौं जईये । वाकी सम कौ आंन न पड़ये ।
मांग बार मसतक भुव नैंन । नाक अधर सब नीरज मैंन ॥

सिर की चोटी से वक्षस्थल तक, जो सुन्दरता दृष्टिगोचर हुई उसके समान अन्य किसी दूसरी नारी में वैसी सुन्दरता प्राप्त ही नहीं हो सकती । उसके सिर में माँग, बाल, मस्तक, भौंहे, नयन, नाक और अधर सब मदन (कामदेव) रूपी कमल को विकसित करने वाले थे ।

गिय कुच कटि जंग स्थल पाई । नष-सिष की छबि कही न जाइ ॥

उसकी गर्दन, कुच, कटि, जंघा स्थल और उसके पैर की, पैरों के नाखूनों से लेकर (शीर्ष की) शिखा तक शोभा ऐसी बेजोड़ थी की उसका वर्णन करना असंभव है ।

दोहा ॥१३॥ नष-सिष अंग अंग विषु भरे, निरषत ही चढि जाइ ।
अमी बसत रसना अधर, बचनानि लेत जिवाइ ॥१३॥

उसे स्वप्न में दिखी दी, नारी के नख से चोटी तक के अंग-अंग मोह उत्पन्न करने वाले सौन्दर्य रूपी विष से भरे हुए थे । उस सुन्दरी के अधरों एवं जीभ में अमृत भरा था । वह सुन्दरी अपने अमृतोपम वचनों से जीवनदायिनी थी।

चौपई ॥१४॥ लेत तमाकू अति चिंत चाइंन । पगिया सीस धरें गति राइंन ।
सोहत सीस जरक सी चीरा । अधरनि में राजत रंग बीरा ॥

स्वप्न में दृष्टिगोचर हुई वह सुन्दरी चित्त की अति चाहत के साथ तम्बाकू ग्रहण कर रही थी । वह शीर्ष पर राजसी परम्परा की प्रतीक पाग धारण किये हुए थी । उसके सिर पर सोने के तारों की जड़ाव से युक्त पट्टी लपेटी हुई थी । ओष्ठों पर पान का रंग सुशोभित हो रहा था ।

करन फूल नक बेसर हार । छरा छुक छुकी चूरी चारू ।
रह्यो थकित कुँवर छबि चाहि । जे हरिते हरते हरि अगहि ॥

कानों में कर्णफूल एवं नाक में मोती सजा हुआ था । हाथ की अँगुलियों में एक छल्ला अंगूठी का पहने थी । धातु स्वर्ण आदि की छुक-छुकी कर रही सुंदर चूड़ियाँ पहिने थी । स्वप्न में ही कुँवर उसकी चाहत करके प्रतीक्षा करते करते थक गया । वह उल्लास से भरी थी, उसमें उद्दाम यौवन हिलोरे ले रहा था । उसके प्रभाव से राजकुँवर का हृदय भी उससे संयोग की लालसा से उतावला हो रहा था ।

गदी पर बैठी दै तकिया । पर्‌यो कुंवर छबि मद कौ छकिया ॥

वह स्वप्न सुन्दरी गद्दी पर तकिये के सहारे बैठी थी, उसके रूप शोभा के मद को हृदय में पी - पीकर कुँवर मद मस्त हो गया ।

दोहा ॥१४॥ संध बिहक्रम परम छबि, उलही कंद्रप कौंप ।
चाहत पैं बोलत नही, कछु लाज कछु चौंप ॥

राजकुमार की आयु का क्रम-वय की संधि की अवस्था का था । उसने जो सुन्दर नारी स्वप्न में देखी वह भी उसी की भांति थी । इस घटना से उसमें कंदर्प का प्रभाव पूर्ण वेग से व्याप्त होकर उभर पड़ा । उसके मन में उस सुन्दरी को प्राप्त करने की अत्यन्त चाह उत्पन्न हो चुकी थी । इस कारण वह गुमसुम था । वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो चुका था । कुछ उसे अपनी लालसा के प्रति लोक-लाज भी थी ।

चौपई ॥१५॥ चिंता बाढ़ी यहै कुँवर मन । काहि न भयौ तमाकू मोपन ।
जरि बरि अंग धूम ह्वै जात । जिन प्रीतम अधरन लपटात ॥

राजकुमार के मन में उस स्वप्न में आई छबीली सुन्दरी को प्राप्त करने के उपायों की चिन्ता होने लगी । वह मन में विचार करने लगा कि क्या यह अच्छा होता कि मैं स्वयं तम्बाकू होता । उस दशा में मेरा अंग-अंग ज्वलित होकर धूम में परिवर्तित हो जाता । उस धूम को प्रियतमा अपने अधरों से लिपटा कर धूम्रपान करती।

होत नारियर जौ तन मेरौ । निडर होइ बोलत पिय नेरौ ।
छाती छेदू चिलम ज्यों करिहौं । सिर पर अगिन मिंत हितु धारिहौं ॥

और यदि मेरा तन हुक्के में प्रयुक्त नारियल का खोपरा होता जिसमें कि पानी भरा होता है और हुक्के की दोनों नालियाँ लगी होती है तो निडर होकर प्रियतमा के श्वांस खींचने के समय बोलता और उसके अन्तस्थल की समीपता प्राप्त कर लेता । अब मैं अपनी छाती में छेद करके अपने हृदय (प्राण) की चिलम संश्लिष्ट करके मन मस्तिष्क में अपनी प्रियतमा के लिए चाहत की अग्नि जला लूँगा ।

बिरह सूक तन नैहचै जाइ । तौ प्रीतम अधरनि लै लाइ ॥

विरहाग्नि से प्रियतम का स्मरण करते-करते शरीर जब सूख जायेगा तब मेरे शरीर का वह भाग जो पंचतत्वों

में विलीन होकर समाप्त हुआ वह निश्चित रूप से प्रियतम के अधरों तक (और फिर उसके श्वासों तक) पहुँचेगा, इस अवस्था में उससे एकाकार - तादात्म्य में संयोग हो सकेगा ।

दोहा ॥१५॥ अैसैं ही मन मैं तकत, चकित रह्यो भरमाइ ।
ग्यानसिंघ सागर बिरहु, पर्‌यौ न निकस्यौ जाइ ॥

इसी प्रकार की समुद्र सरीखी अथाह विरह पीड़ा वाली अवस्था में पड़कर, संयोग की पार पर पहुँचने के लिए मानसिक उपायों में लीन राजकुमार ज्ञानसिंह - भ्रम के चक्रों में पाशबद्ध हो चुका था ।

चौपई ॥१६॥ त्राटक लगी कुँवर हितु पाग्यौ । रैन चली दिंन आवन लाग्यो ।
सुनहु वो सबहि उज्जल बाति । भोर हंसी है भाजी राति ॥

प्रियतमा के ध्यान में राजकुमार को समाधि अवस्था वाली त्राटक लग गई और उससे राजकुमार के हित का कार्य हो गया । विरह की रात्रि दूर हो गई । मिलन रूपी दिन प्रकाशित होने लगा । अब सब कुछ सुखप्रद उज्वलता की बात घटित हुई । सुखप्रद ऊषा की वेला प्राप्त हो गई । विरह दु:ख रूपी निशा का अंत हो गया । अर्थात् स्वप्न सुंदरी से मिलन होता रहा ।

रंचक रैन रही जब आइ । रूपवंत तिय गई बिलाइ ।
रोवत कुंवर नींद बुद्धि गई । हाइ-हाइ कैसी गति भई ॥

जब समाधि त्राटक रूपी मिलन की स्वप्न वाली रात्रि जब अल्प ही रह गई तब वह रूपसी विलुप्त हो गई । कुँवर को त्राटक में प्राप्त वह स्वप्न में आई हुई बुद्धि जब नष्ट हो गई तब राजकुमार रोने लग गया । हाय ! हाय! यह मेरी कैसी दु:खपूर्ण अवस्था हुई है ।

उघरे नैंन भयौ दु:ख भारी । कहूं नाहिं आवती डिढ प्यारी ॥

उसके नैन त्राटक की समाप्ति पर जब खुले तब वह प्रियतमा कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी ।

दोहा ॥१६॥ अंधकार सौ छै रह्यौ, कछू न सूझत नैंन ।
पिय ससि निस दिन ते बिमल, बिनु पिय दिन तम रैंन ॥

आँखों के सामने अंधकार सा छा रहा था । नैनों को कुछ दिखाई नहीं देता था । क्योंकि राजकुमार का ध्यान अपनी प्रियतमा में लगा हुआ था । बिना प्रियतमा के इस विरह अवस्था में दिन में भी रात्रि का घोर अंधकार छा रहा था । और राजकुमार को अपनी प्रियतमा का मुखचन्द्र दृष्टिगोचर हो रहा था ।

चौपई ॥१७॥ मिंत बुलाइ कही सब बात । जिंह जिंह भांति बिहानी राति ।
मिंत हमैं जीवत जिन जानह । कै चितु चोर कहूं ते आनहु ॥

राजकुमार ने अपने मित्र से अपनी विरह अवस्था की समस्त बातें बताई कि उसने वह रात किस तरह से व्यतीत की । उसने कहा हे मित्र ! हमें प्रियतमा के वियोग के कारण, यथार्थ रूप में जीवित मत जानो, और यदि जीवित रखना चाहते हो, तो हमारे चित्त का अपहरण करने वाली उस प्रियतमा को कहीं से भी ढूंढ़ कर यहाँ ले आओ ।

कहां करौ हौ सिरजन हारौ । कहां जाऊं पाऊं कित प्यारौ ।
चितु लै गई दै गई चिंत । बेगि उपाव करहु कछु मिंत ॥

विधाता ने ये क्या कर डाला, मैं उस प्यारी को ढूंढ़ने कहाँ जाऊं । वह मेरा चित्त ले गई है और चिन्ता दे गई है । है मित्र ! उससे मिलने का कोई भी उपाय शीघ्र करो ।

को ही बुधि लई हरि मेरी । पूछौ काहि न कांहूं हेरी ॥

वह कौन थी ? जिसने मेरी बुद्धि हर ली । अब मैं उसके विषय में किससे पूछूं । ऐसा भला है ही कौन ? जिसने उस सुन्दरी को खोज लिया हो ।

दोहा ॥१७॥ बरन्यौं नाहिंन जातु है, महारूप अधिकार ।
कै जानत हैं नैनमो, कै बहु सिरजन हार ॥

मेरी प्रियतमा अत्यन्त रूपवती है । उसके रूप-सौन्दर्य की अतिशयिता का वर्णन शब्दों में करना असम्भव है। उसके स्वरूप को या तो विधाता जानता है अथवा मेरे मानस चक्षु उसे पहचानते हैं ।

चौपई ॥१८॥ करि हैं कुँवर अनंत विलाप । अंग-अंग पीरत हित ताप ।
कुँवरहि मिंत बहुत समुझावै । इन बातनं कुछ हाथ न आवैं ॥

कुँवर अनंत विलाप करने में लगा हुआ था । उसके अंग-अंग में उस सुन्दरी के लिए विरह के कारण पीड़ा हो रही थी । उस कुँवर को उसका मित्र ज्ञानसिंह बहुत समझा रहा था कि तेरे इस प्रकार विलाप करने से कुछ अभीष्ट की सिद्धि होने वाली नहीं है ।

बहुरि कभूं जौ दई दयावै । सपुनै मैं प्यारी फिरि आवै ।
नांम गांव जो मन की चाहि । भेदु पाई है पूछैं ताहि ॥

कुँवर ने अपने मित्र को बताया कि मुझे ऐसी आशा है कि विधाता मेरी सच्ची पीड़ा पर सम्भवत: दया करके उस प्रियतमा को स्वप्न में मेरे पास भेज देंगे । स्वप्न में प्रियतमा से मेरा मिलन हो गया तो मैं अपनी इच्छा के अनुरूप

उसका नाम निवास का पता आदि पूछकर समस्त रहस्य जान सकूँगा ।

जब वहु अपनौं देस बतावत । उठि है मिंत बेग उत धावत ।।

जब वह अपना निवास और देश बता देगी तब हे मित्र ! मैं वेगपूर्वक यहाँ से चल कर उसी स्थान पर जाकर उससे भेंट कर लूँगा ।

दोहा ।।१८।। कर जौरे विनती करत, दयावंत करतार ।
येक बार दिषराई फिरि, सपुनैं ही बहुनार ।।

वह राजकुमार हाथ जोड़कर इस प्रकार विनती करने लगा कि हे दयालु विधाता मेरी उस सुन्दरी प्रियतमा को स्वप्न में ही एक बार फिर से दिखादो ।

चौपई ।।१९।। बहुत रैंन बिललात बिहाई । कैंहूं कैंहूं निद्रा आई ।
बहुरि तकी वह चितु की चोरि । विनती कुँवर करी करी जोरि ।।

उस राजकुमार ने बहुत रात्रि तो विलाप करते-करते ही व्यतीत कर दी । तब जैसे-तैसे कर के उसे नींद आ गई । तब उसे वही चित्त को चुराने वाली प्रियतमा स्वप्न में फिर से दिखाई पड़ी । कुँवर ने हाथ जोड़कर विनती करके उससे पूछा ।

नग्र कौन तेरौ असथान । तब कंकन पर राख्यौ पांन ।
कहा अहि घर की सहलांनीं । हाथ तबहि दिषरायौ रानी ।।

तुम्हारा निवास का नगर कौनसा है और उस नगर में रहने का स्थान कौनसा है । तब उस सुन्दरी ने अपने कंकन पर अपना हाथ रखा । जब यह पूछा कि इस नगर में घर किस गाँव में है, तब उस रानी ने हाथ को इशारे से दिखलाया ।

नांव पिता कौ करहु बषांन । तबहि कान पर राष्यौ पांन ।।

जब कुँवर ने कहा कि अपने पिता के नाम का वर्णन करो तब उसने अपने कान पर हाथ रख दिया ।

दोहा ।।१९।। बहुर्यौ पुहुस्यों कुँवर जब, कहा नावं है मात ।
तब हंसिकै इत उत फिरि, मुष कछु कही न बात ।।

इसके बाद कुँवर ने स्वप्न में जब उस सुन्दरी से पुन: पूछा कि तुम्हारी माता का क्या नाम है ? तब उस सुन्दरी ने मुख से तो कोई बात नहीं बताई, किन्तु वह हँस कर इधर-उधर फिरने लगी ।

चौपई ॥२०॥ बहुरि कुंवर पग लाग्यौ धाई । अपनौं नांव कहौ समुझाइ ।
मुष तें सबद न कछू उंचार्‌यौ । लै द्रपन मैं रूप निहार्‌यौ ॥

इसके पश्चात् कुँवर ने दौड़कर उसके पैरों का स्पर्श किया और विनती की कि अपने नाम को समझाकर बताओ । तब उसने मुख से कुछ भी नहीं कहा, सुन्दरी हाथ में दर्पण ले करके उसमें अपना रूप निहारा ।

जबहिं कह्यौ पई यहिं किंह भांति । भाजि गई तब मन मुसकाति ।
सकल बात सैननि मैं कही । ग्यानसिंघ देषत ही लही ॥

कुँवर ने जब यह कहा कि आपको किस उपाय से प्राप्त किया जा सकेगा, तब वह मन में उल्लासित हो मुस्कराती हुई वहाँ से भाग गई । उसने राजकुमार द्वारा पूछी गई समस्त बातों का उत्तर इशारों (संकेतों) से समझा दिया और ग्यानसिंह ने उन सब संकेतों को देखते-देखते ग्रहण कर लिया ।

भोर भये जाग्यो आनंदन । मिंत बुलाइ कियौ पग बंदन ॥

जब सुबह हुई तब वह आनन्द का अनुभव करता हुआ जगा, उसने अपने मित्र न्यानसिंह को बुलाकर उसके चरणों को प्रणाम किया ।

दोहा ॥२०॥ आज रैंन मैं फिरि तकी, बहु मनमोहन हार ।
सगरी बातें पूछिकै, नीकैं लयौ बिचार ॥

राजकुमार ने अपने मित्र न्यानसिंह को बताया कि, आज मैंने अपनी अभीप्सित (चाही गई) वह मन मोहिनी प्रियतमा, स्वप्न में फिर दिखाई दी । उससे समस्त परिचय पूछा है और उसके द्वारा बताई गई बातों पर भली-भाँति विचार भी कर लिया है ।

चौपई ॥२१॥ दोऊ मिंत बिचारन लागे । ग्यानवंत पुनि महा सुभागे ।
उन जु तिया कंकन दिषरायौ । सो कंकनपुर नग्र बतायौ ॥

दोनों मित्र विचार करने लगे । वे ग्यानवंत थे तथा अत्याधिक सौभाग्यशाली थे । विचारपूर्वक उन्होंने रूपसी द्वारा प्रकट किये गये संकेतों का अर्थ - स्पष्ट कर लिया कि उस सुन्दरी ने जो 'कंकन' दिखा कर अपने नगर का संकेत दिया उसका अर्थ कंकनपुर नगर है ।

घर कै नांव दिषायौ पांनिं । हथियापौर दई सहनानि ।
पिता नांव कर राष्यौ कांन । राजा कर्न नांव तिहि जान ॥

घर का नाम बताने के लिए उसने 'हाथ' दिखाया था, इससे उसने अपना निवास स्थान 'हथियापौर' बताया ।

पिता का नाम पूछने पर उसने अपना हाथ अपने कान पर रख लिया था, इसका तात्पर्य यह है कि उसके पिता का नाम कर्ण है ।

माता नावं हंसि फिरि दिषरायौ। हंसगवन तिहं नांव बतायौ ॥

माता का नाम पूछने पर उसने हँस कर, फिर गमन जो किया उससे 'हंसगमनी' नाम प्रकाशित किया है ।

दोहा ॥२१॥ जब मैं पूछ्यौ नांव उहि, दर्पुन कीनीं पानं ।
रूप तक्यौ ताते लष्ये, रूप मंजरी ग्यांन ॥

जब मैंने उससे उसका नाम पूछा तब उसने अपने हाथ मैं दर्पण लेकर उसमें जो अपना रूप निहारा था उससे उसने अपने नाम का परिचय 'रूपमंजरी' प्रकट कर दिया है ।

चौपई ॥२२॥ जबहिं कह्यौ कैसी विधि पाऊं । कौंन भांति तेरे ढिंगु आऊँ ।
भाजि गई यहु भेद बताई। बैठ्यो कहा बेगि उठि धाई ॥

राजकुमार अपने मित्र न्यानसिंह को स्वप्न में घटित मिलन के समय की बातों को बताते हुए कहता है कि जब मैंने कहा कि, "मैं किस विधि से तुझे प्राप्त करूँ और किस रीति से तेरे समीप पहुँचूँ ।"तब वह इस विषय में समस्त भेद बताकर चली गई । मैंने तो उससे कहा कि बैठो, ठहरो, किन्तु वह सुंदरी तो वेगपूर्वक चली गई ।

मतौ चंलन कौ दहुँवानि कीनौं। अपनौं भेद न तीसर दीनौं ।
येक रैंन सोवति फिरि पाई। रूपमंजरी सुपनै आई ॥

इसके पश्चात् राजकुमार ग्यानसिंह और उसके मित्र न्यानसिंह ने आपस में विचार - विमर्श कर यह सुनिश्चित कर लिया कि उससे मिलने चलेंगे । उन दोनों ने इस बात का भेद किसी तीसरे व्यक्ति को नहीं बताया । एक बार रात्रि में जब ग्यानसिंह सो रहा था तब वह रूपमंजरी स्वप्न में फिर से आ गई ।

कुँवर कह्यौ हम गहर न लावहिं। वेगे ही कंकनपुर आवंहिं ॥

तब राजकुमार ने स्वप्न में ही उससे कह दिया हम शीघ्र ही कंकनपुर आयेंगे और पहुँचने में अब विलम्ब नहीं करेंगे ।

दोहा ॥२२॥ रूपमंजरी चलन सुनि, ऐसौ कियौ सुभाइ ।
मुष पर पट घुँघट लयौ, बहुर्‌यौ गई बिलाइ ॥

उस रूपमंजरी ने कंकनपुर चलने की बात सुनी तब उसने प्रीति के समर्पणयुक्त स्वभाव को अभिव्यक्त करते हुये अपने मुख पर घूँघट निकाल लिया । और तत्पश्चात् पुन: विलीन हो गई ।

चौपई ॥२३॥ कुँवर भोर कौं मिंत बुलायौ । निस कौ भाव द्यौंस प्रगटायौ ॥
दहूं मिंत यहु बतियां पाई । मुष पट दै पाटन समुझाई ॥

प्रात:काल होने पर राजकुमार ने अपने मित्र न्यानसिंह को बुला लिया । रात्रि को देखे गए स्वप्न की घटनाओं को अब दिन के प्रारम्भ होते ही अपने मित्र को समझा कर कहा ।दोनों मित्रों ने मुख पर वस्त्र (पट) से परदा करने के संकेतितअर्थ 'पाटन' को ग्रहण कर निश्चित कर लिया कि पाटन के लिये प्रस्थान करना है ।

अरध रैन पौढ़े सब कोइ । निकसे मिंत तबहिं ये दोइ ।
पुरषनि पास सुनी ही पाटन । लागें चौंपन मारग काटन ॥

आधी रात के समय जब कि सभी नगरवासी सोये हुए थे, तभी अनुकूल अवसर जानकर दोनों मित्र पाटन की ओर प्रस्थान करने हेतु निकले । अनुभवी पुरूषों के मुख से पाटन के विषय में सुन रखा था । वे दोनों मित्र उत्साह के साथ में मार्ग को तय करने लगे ।

काहे कहे सत्र पुनि बाट । सो घटि रहे चलै जो घाट ॥

उन्हें अत्यन्त समय व्यतीत हो गया था । कई घाट पार करके वे पाटन के समीप पहुँचे ।

दोहा ॥२३॥ चले जातु है रैंन दिनु दरसन परसन चिंत ।
बारमास भरमत भ्रंवत पाटन पुंहचे मिंत ॥

मन में रूपमंजरी के दर्शन और स्पर्श की चिंता रखकर रात-दिन निरंतर चलते-चलते बारह मास में भ्रमित होकर घूमते-घूमते पाटन में दोनों मित्र पहुँच गये ।

चौपई ॥२४॥ लई सुरति पाटन कैं मांहिं । रूपमंजरी तौ इत नाहिं ।
ऐसै कहत लोग सब बात । यहु पीहर है वाकी मात ॥

दोनों मित्रों ने पाटन नगर में पहुँचकर खोज की कि कहीं यहाँ रूप मंजरी तो नहीं रहती है । वहाँ के लोगों ने इस प्रकार से सब बात बताई कि यह तो उसकी माता का पीहर है ।

रूपमंजरी है घर अपनैं। इतके लोग तकत है सपनैं ।
पैं बाकी मूरती अभिराम। चित्री है राजा कैं धांम ॥

रूपमंजरी अपने घर पर है । इधर के लोग भी उसकी अभिराम शक्ल को देखने के लिए सपने देखते हैं । उसकी मूर्त्ति अभिराम है । राजा के भवन में इस (रूपमंजरी) का चित्र है ।

जौ व़ाकौं तुम देषंन पावहु । दई-दई कहि -कहि मुरझ छावहु ॥

यदि तुम उसको देख लोगे तो विधाता का नाम दइया-दइया रट-रट कर उसकी चाहत में मूर्छित होकर पड़ जाओगे ।

दोहा॥२४॥ कुँवर कहै तुम गुरु भये, देहु जंमन का डारि ।
मूरति परसौं कौन विधि, सो सब कहो विचार ॥

कुँवर ने कहा कि तुम हमारे गुरू हो गये हो, अब तुम इस रहस्य का पर्दा भी उठा दो । और स्पष्ट उपाय बता दो कि किस प्रकार से रूपमंजरी की मूर्त्ति का मैं स्पर्श कर सकूँ ।

चौपई॥२५॥ सदन बार बैठे परदार । देकैं भैंटु करहु मनुहार ।
पिय पौरी पग पग परदार। जो जैहे सो आपुनि वार ॥

उन लोगों ने युक्ति इस प्रकार बताई कि राजा के भवन मैं पहरेदार बैठे होते हैं । उनको भेंट देकर विनम्रता से प्रार्थना करो । आपकी प्रियतमा के निवास के द्वार तक पग-पग पर पहरेदार नियुक्त हैं । वहाँ पर अपने-अपने लिए, अनुमति प्राप्त करके ही जाया जा सकता है ।

जौंलौ आप कहा है जाव। जाय वहै जिन्है रहै न आप ।
दोऊ मिंत धौराहर धाये। पौर -पौरिया बैठे पाये ॥

जब तक आप अपनी राजसी हैसियत में हैं, तब तक आप वहाँ नहीं जा सकते हैं । वह ही वहां तक जा सकता है जो अपना आपा (आत्मअभिमान) त्याग दे और एक सर्वसाधारण प्रकार का दीन-हीन व्यक्ति बन जाये । दोनों मित्र उस धवल गृह की ओर तीव्र गति से गये । वहाँ के दरवाजें पर उन्होंने द्वारपालों को नियुक्त पाया ।

जो मांगी सो दई अंकोर । आंसू ढ़ारे किये निहोर ॥

उन दोनों मित्रों ने, उन्होंने जो कुछ मांगा, वहीं अपनी जेब से निकाल कर सब कुछ भेंट कर दिया । ये दोनों खूब आँसू बहाकर रोने लगे और दीन वचन भी बोलने लगे ।

दोहा ॥२५॥ देषि दया ये पौरिया, मारग दीनौ धांम ।
दान रूदंन पुनि हीनता, ये आवत है कांम ॥

द्वारपालों ने, इनको इस दशा में देखकर पूरी दया दिखाई और रूपमंजरी के धवल गृह में जाने का मा– उपलब्ध करा दिया । जान कवि कहते हैं कि यह नीति-निर्देशक सिद्धान्त है कि दान देना, रूदन करना, और दीन– हीनता प्रकट करके विनम्र व्यवहार करना यह व्यवहार प्रयोजन सफल करने में सिद्धी दिलवाता है ।

चौपई ॥२६॥ जैसी देषी ही तिय सपनैं । मूरति वहै तकी द्रिग अपनैं ।
रीझि कुँवर मुरछा गति आई । लयौ उचाइ न्यानसिंघ भाई ॥

राजकुमार ने उस भवन में प्रवेश करके वहाँ पर उसी स्वप्न में देखी हुई सुन्दरी रूपमंजरी की ज्यों की त्यों मूर्ति अपनी आँखों से देखी । जिस पर रीझ कर के राजकुमार को मूर्छावाली अवस्था प्राप्त हो गई । तब उसके सहायक धर्म भाई न्यानसिंह ने उसे सम्भाल कर उठा लिया ।

न्यांनसिंघ हूँ मूरति हेर । धंन द्रिगु कुँवर कह्यौ बहु बेर ।
लाग्यौ कुँवर करन उहि सेव । ज्यौ पुजारौ पूजत देव ॥

न्यानसिंह ने जब मूर्ति को देखा तब उसने कई बार कहा कि हे कुँवर वास्तव में तुम्हारे नेत्र परम सौभाग्यशाली हैं । जब कुँवर उस सुंदर मूर्ति की उसी प्रकार सेवा पूजा करने लगा जिस प्रकार से एक पुजारी देवता को पूजता है ।

न्यानसिंघ बोल्यौ सुनि ग्यांन । कहा सेव तूं करत बषांन ॥

न्यानसिंह ने कहा - हे ग्यानसिंह ! मेरी बात को ध्यान से सुन और बता कि तू किस प्रयोजन से और किस प्रकार से यह सेवा कर रहा है ।

दोहा ॥२६॥ याकैं तो नैंना नहीं, जो देखे तुव व़ोर ।
ना स्रवननि कछु सुनत है, जौ तू बकहि करोर ॥

जानकवि न्यानसिह के मुख से मूर्ति पूजा के रहस्य पर व्याख्यान देने हेतु प्रश्न न्यानसिंह के मुख से कहलवा रहे हैं । न्यानसिंह पूछता है, इस मूर्ति के तो नयन भी नहीं हैं जो तुम्हारी ओर देखे । और इस मूर्ति के कान भी नहीं हैं। जो कि तू करोड़ो बार आरती बकता रहे तो भी कुछ सुन सके ।

चौपई ॥२७॥ रसना बिना बोलिबौ दूतर । येक बात कौं देंत न उत्तर ।
चलत न संग न दै सिर पांनि । कहा सेव तू करत बषांनि ॥

न्यानसिंह बुद्धिमतापूर्ण बातें समझाने लगा कि देखो भाई ग्यानसिंह । इस प्रकार मूर्त्ति की पूजा करना उचित नहीं है क्योंकि बिना जीभ के बोलना संभव नहीं है, इसलिए यह मूर्त्ति उत्तर नहीं देती है । यह मूर्त्ति हमारे साथ चलती भी नहीं है और सिर पर हाथ भी नहीं रखती है । फिर तू इसकी सेवा में अपना समय क्यों नष्ट करता है । यह बता कि कार्य में सुसंगतता कहाँ है ।

न्यानसिंघ कीनौं यहु न्याँन । ग्यानसिंघ उपज्यों तब ग्यांन ॥
मूरति छाड़ि गह्यौ मग मिंत । चीरत पीरत चाहन चिंत ॥

न्यानसिंह ने जब उसे समझाया तब ज्ञानसिंह को सही ज्ञान प्राप्त हो गया । तब उसने मूर्त्ति की सेवा को त्यागकर अपने मित्र द्वारा बताये गये सुझाव के अनुसार कंकनपुर पहुँचने के मार्ग पर प्रिया की चाहना की चिन्ता में चलना प्रारम्भ कर दिया । इस वियोग-अवस्था में उसे बहुत पीड़ा सहनी पड़ रही थी ।

जात - जात बीते द्वै मास । तब पुंहचे कंकनपुर पास ॥

चलते-चलते जब दो महीने व्यतीत हो गये, तब वे कंकनपुर नगर के पास में पहुँचे ।

दोहा ॥२७॥ नगर पैठि मांलनि तकी, जो वाकैं नित जाइ ।
कछू निहोरे कछू दै, ताकैं उतरै आइ ॥

जब वे नगर के दरवाजें पर पहुँचे, तब उन्होने नगर के द्वार पर एक मालिन पर निगाह डाली । उक्त मालिन नित्य ही राजा के रनिवास में जाया करती थी । तो उसके पास पहुँच के उन्होंने कुछ भेंट द्रव्य की दी और कुछ विनम्रता से प्रार्थना की और तब वे मालिन के घर पर रहने लगे ।

चौपई ॥२८॥ दै दै बहुत रिझाई मालंन । लागी वहौ पीति तब पालंन ।
मांलन सुनहु बीनती येक । दमका दै हे तुमहि अनेक ॥

राजकुमार ने दान-दक्षिणा दे-देकर उस मालिन को खूब वश में कर लिया । तब वह उनके लिए समस्त कार्य प्रीतपूर्वक करने को प्रस्तुत रहने लगी । तब राजकुमार ने निवेदन किया, "हे मालिन ! तुम हमारी एक विनती पूरी कर दो । हम तुमको अनेक स्वर्ण-मुद्रायें देंगे ।

पेन्हु जाहु उत बसतर स्याम । यामै आहि हजारों काम ।
रूपमंजरी पूछै तोहि। बसत्र स्यामं भेद कहि मोहि ॥

तुम राजभवन में काले वस्त्र पहन कर जाओ । इस विधि से हमारा कार्य - सिद्ध हो जायेगा । रूपमंजरी तुमसे पूछेगी कि काले वस्त्र पहनने में क्या प्रयोजन है १ वह भेद बताओ ।

तबहिं कही को पंथी आहि। नीलंबर पहिराये चाहि ।

तब तुम कहना कि हमें कोई विशिष्ट पंथ का अनुयायी मिल गया है, वह हमें नीले वस्त्र पहनाना चाहता है।

दोहा॥२८॥ मालंन नीलंबर पहरि, गई रूपवंत पास ।
भेद पूछि सु समुझिकैं, हिय मैं बढ्यौ हुलास ॥

मालिन नीले रंग के वस्त्र पहन कर रूपमंजरी के पास पहुँची । मालिन से उस राजकुमार का भेद पूछकर और सब कुछ परिचय समझकर, रूपमंजरी के हृदय में आह्लाद उत्पन्न हो गया । और उसमें प्रेम की उमंग बढ़ गई।

चौपई॥२९॥ नीलबंर तें तबही पायौ । रैंन सपुन टेर्‌यौ सो आयौ ।
हे रूपमंजरी पुहपनि माल। मांलन कै गर मैं दीं घाल ॥

नीलम्बर से ही यह रहस्यमय संकेत प्राप्त हो गया था कि रात्रि में स्वप्न में जिसे देखा था वही, यहाँ अब आ पहुँचा है । रूपमंजरी ने पुष्पों की माला मालिन के गले में डाल दी ॥

याहि बिधि पंथी पैं जाहि। देषि बंनाव बढ़ें ज्यों चाहि ।
पुहप माल पेन्हें वह आई। कुंवर बात देषत ही पाई ॥

उसने मालिन से कहा इस विधि से इस रूप में तूं जब उस पंथी राजकुमार के पास जायेगी, तो उसके हृदय में मेरे प्रति अनुराग बढ़ जायेगा । जब मालिन जो दूती के काम में नियुक्त थी, वह पुष्प की माला पहने हुए जब राजकुमार के पास पहुँची तो कुँवर ने उसे इस रूप में देखते ही रूपमंजरी का संदेश प्राप्त कर लिया ।

चैंन भयौ दहुवनि मन भारी । उपवन मांहि बुलायौ नारी ॥

दोनों मित्रों के मन में अत्यधिक चैन उत्पन्न हो गया । उनको यही समझ में आया कि रूपमंजरी ने राजकुमार को उपवन में बुलाया है ।

दोहा ॥२९॥ भोर भये उपबन गये, दोऊ मिंत कर बाज ।
यहै बीनती करत हैं, दई मिलावहु आज ॥

अगले दिन सुबह होने पर दोनों मित्र सजधज कर उपवन को गये । वे यही विनती करते जा रहे थे कि हे विधाता ! आज रूपमंजरी से मिलवा दीजिए ।

चौपई ॥३०॥ बानक कहा बषानौं बागु । चैंन दैंन हरता कै रागु ।
बरन अनेक पुहप बहु बास । देषत बाढै महा हुलास ॥

मैं उस बाग का कहाँ तक वर्णन करूँ? वह बाग मन को चैन देने वाला और वियोग को दूर करने वाला था। वहाँ अनेक प्रकार के रंग तथा सुगंध वाले पुष्प खिले हुए थे । उन पुष्पों को देखने से अत्यन्त उमंग उत्पन्न होती थी ।

पात बसन की सोभो रूषन । फूले सो पहिरे आभूषन ।
मधुर बचन मधुकर बहु बोलैं । अंबर पत्र पौंन लगि डोलैं ॥

वृक्षों पर भाँति-भाँति के पत्ते उत्तम वस्त्रों की भांति सुशोभित हो रहे थे । वे वृक्ष फूलों से लदे थे वे मानों आभूषणों से शृंगार किये हुए थे । अनेक प्रकार से बहुत से भँवरे मधुर-मधुर गुँजार की ध्वनि कर रहे थे । आम के पत्र हवा से हिल डुल रहे थे । कुछ पत्ते आकाश में उड़ रहे थे ।

पवन लागि मिलिहै तर डार । मिंत मिंत कौं दैं अंकवार ॥

जब पवन पेड़ों को हिलाती थी तब विभिन्न वृक्षों की डालियाँ आपस में मिल जाती थी । उससे एक ऐसा दृश्य समझ में आता था कि मानों मित्र मित्रों से एक दूसरे को गोद में लेकर आलिंगनपूर्वक मिल रहे हों ।

दोहा ॥३०॥ येक पांव तरवर खड़े, तकन चौप मन मांहिं ।
रूप मंजरी आइहै, करै बिछौंना छांहि ॥

वे राजकुमार वृक्ष के पास खड़े उत्साहपूर्वक मन में यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि रूपमंजरी बस आती ही होगी। तभी छाया में बिछौना बिछा कर बैठेंगे ।

चौपई ॥३१॥ पंछी गाइंन बहुते आये । रूपमंजरी आगम पाये ।
चंचरीक सुर षरंज सुनावैं । कलकंठी कल पंचम गावैं ॥

बाग में उस समय रूपमंजरी के आगमन से पहले ही बहुत से गवैया बनकर भांति-भांति के पक्षी अपनी-अपनी ध्वनि में प्रसन्नता के गीत गाने लगे । चंचरीक पक्षी और खरंज (खंजन) पक्षी अपने-अपने मधुर स्वर सुनाने

लगे । कोयल पंचम स्वर में मधुर नाद सुनाने लगी ।

केकी ऊंचौ सबद सुनावैं । सुर निषाद की गति समुझावैं ।
पीलू महा मधुर सुर बोलैं । सब मुष जपन हार जप खोलैं ॥

मयूर पक्षी ऊँचे स्वर में शब्द सुनाने लगे और जो संगीत शास्त्र में निषाद स्वर होता है उसके उतार-चढ़ाव की गति समझाने लगे । पीलू पक्षी अत्यधिक मधुर स्वर में बोलने लगे । ये सभी पक्षी प्रकृति को प्रसन्न रखने वाली ध्वनि के साथ में जाप करने लग गये ।

चोटी चिंकना साषी साषा । पल पल मैं बोलैं बहु भाषा ॥

शिखा वाली चिकना पक्षी, साखी चिड़िया और साखा पक्षी पल-पल में बहुत भाँति की भाषाएँ बोलकर प्रकृति को प्रसन्न करने में लग गये ।

दोहा ॥३१॥ सब पंछी सुमिरंन करैं, निस बासुर करतार ।
तूं इत उत भरमत फिरहि, रे मन मूढ़ गंवार ॥

जान कवि कहते हैं कि हे मूढ़ गँवार मन ! तूँ सांसारिक प्रपंच में राग द्वेष में फँस कर भ्रम में पड़ा हुआ है जबकि सभी पक्षी दिन-रात प्रकृति के अनुशासन में रहकर विधाता का ही स्मरण अपने-अपने स्वर में करते हैं ।

चौपई ॥३२॥ मग देषत है दोऊ भाई । बास अरगजा सनमुष आई ।
रूप दमक दूरहि दिढ़ आई । सषिनि - छटा विदुति चमकाई ॥

बाग में प्रतीक्षा कर रहे दोनों मित्र राजकुमार ज्ञानसिंह और न्यानसिंह के सूँघने में अगर की सुगंध आयी उसी के साथ दमकते रूपवाली रूपमंजरी दूर से आती हुई दृष्टिगोचर हुई । साथ ही सखियों में वह अपनी रूप शोभा से विद्युत् की चमक का प्रकाश कर रही थी ।

आवति-आवति आई बागु । फूलनि मैं न रह्यौ - अनुरागु ।
नैंन बदन कुच अैसे कंवल । मुरझित नाहिं रहत नित नवल ॥

आते-आते वह बाग में आ पहुँची । वहाँ फूलों में, कामदेव का अनुराग छा गया । उसके नयन, उसका मुख और उसके कुच (स्तन) इस प्रकार के कमल हैं जो कि सदैव नूतन रहते हैं और मुरझाते नहीं हैं ।

और कंवल जो उपवन मांहिं । कोऊ द्यौंस को निस मुरझाहिं ॥

जबकि उपवन में जो कमल होते हैं वे एक दिवस में एक रात में मुरझा जाते हैं ।

दोहा ॥३२॥ रूप बैंस की बास तैं, पुहप लजाये सर्व ।
देषत ही मुरझित भये, रह्यो न काहू गर्व ॥

इस रूपकुँवर की यौवन की गंध से समस्त पुष्प लज्जित हो गये और वे समस्त पुष्प मुरझा गये । उन सभी पुष्पों का गर्व समाप्त हो गया ।

चौपई ॥३३॥ लै तकिया बैठी तिय चौकी । कीनी येक अपछरा सौकी ।
देषी ही सपुने मैं नार । सो प्रगट दीनी करतार ॥

सपने में राजकुमार ने जो रूपसी चौकी पर बैठी हुई देखी थी वह सैंकड़ों अप्सराओं में भी सुन्दर अप्सरा की भांति थी । राजकुमार ज्ञानसिंह ने स्वप्न में जो सुन्दरी देखी थी, वह अब विधाता ने प्रकट में भेंट कर दी ।

देषि - देषि कुँवरहि ह्वै सांति । कही न आवै काहू भांति ।
मनमोहन काकै कर आवै । पूरन भाग होंहि सो पावै ॥

अब कुँवर के मन में उसे देखकर, जो शांति प्राप्त हुई, वह किसी भी प्रकार से शब्दों में वर्णित नहीं हो सकती है । मन - भावन वस्तु भला किसको मिल पाती है ? जो भाग्य का पूरा होता है उसे ही मन की भावती वस्तु मिल पाती है ।

जाकै नांव प्रान बलि दीजै । सो पईये तौ जुग जुग दाजीजै ॥

जो व्यक्ति प्रेम के कारण जिसका नाम सुनकर ही प्राणों की बलि देने को तैयार हो जाता है, उसे वह वस्तु या प्रिय प्राप्त हो जावे तो वह उसे प्राप्त करके युग-युग तक जीवित रहने की महा प्राणता शक्ति प्राप्त कर लेता है ।

दोहा ॥३३॥ मंन मोहंन कौ मोह जिंह, ताहि न मोंहत मोह ।
त्रिसना रहै न तुछ तन, व्यापति लोभ न कोह ।।

जिसकी लगन अपने ईष्ट के प्रति लगी होती है वह पाखण्डपूर्ण - अज्ञानता भरे प्रपञ्च में नहीं फँसता है । उसको जब तृष्णा नहीं रहती है तब लोभ और क्रोध भी नहीं रहता है ।

चौपई ॥३४॥ देषि कुँवर उपज्यो तिय नेहु । रोवत जैसै पावस - मेहु ।
सपुनैं ही हौं रीझि बुलायौ । अब देषत हित भयौ सवायौ ॥

राजकुमार को बाग में देखकर, उस रूपमंजरी के हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया । वह इस प्रकार रोने लगी कि

आँसुओं की वर्षा से उसने पावस ऋतु सदृश मेह उपस्थित कर दिया । स्वप्न में ही रीझ कर मैंने तुम्हें बुलाया था । अब साक्षात् सामने देखने पर वह आकर्षण पहले से भी अधिक बढ़ गया ।

दूरि - दूरि देषंहिं सुष पावहिं । लोग कांनि तें निकट न आवहिं ।
तनहिं जरावति बिरहा ताप । निकट रहत पै विकट मिलाप ॥

संसार की लोक-लाज के वशीभूत रहकर प्रेमी-जन अपने प्रिय को दूर से देखकर ही सुख प्राप्त करते हैं । किन्तु वे समीप आकर मिल नहीं पाते हैं । वियोग का संताप उनके मन को पीड़ित करता रहता है । हृदय में समीपता रहने से विकट मिलाप होता रहता है ।

तिय चितु भई नेहु की चिंत । चितुरंन लागी मूरति मिंत ॥

रूपमंजरी के हृदय में प्रेम की भावी चिंता उत्पन्न हुई उसने अपने मित्र में, अनुकूल भावों की कल्पना करके उसका चित्र बनाना प्रारम्भ कर दिया ।

दोहा ॥३४॥ परगट तकत न बावरी, चित्रत बे ही कांम ।
कहा करै चित्रांम कौं, है जाके चित राम ॥

प्रकट रूप में राजकुमार दिखाई दे रहा था किन्तु रूपमंजरी तो भावी अपेक्षाओं में अनुरक्त होकर चित्राङ्कन में तल्लीन हो गई थीं । जिसके हृदय में 'आह्लादक' सुशोभित हो जाता है वह अपनी मन की कल्पनाओं को उकेरने में (कविता में या भाव भंङ्गिमाओं के चित्राङ्कनों में ही) रमण करता है ।

चौपई ॥३५॥ उठि तिय लगी बागु में डोलन । पुहप माल कर मुष पिय बोलन ।
ज्यौं ज्यौं पवन झकोरै डारि । दुरि दुरि डोलति है वह नारि ॥

रूपमंजरी चित्राङ्कन -कार्य से उठकर बाग में डोलने लगी । उसने इधर-उधर से पुष्पों का चयन करके, पुष्पमाला तैयार करके हाथों में ले ली और मुख में मधुर प्रेम रस सने बोल थे । पवन के झंकोरों से ज्यों-ज्यों डालियाँ झूम-झूम उठती थीं, वह रूपमंजरी भी उमंग-तरंङ्ग के साथ वहाँ डोल रही थी ।

तन की महा सुकोमल नारि । धुकि धुकि जरति धुक धुकी भारि ।
नेहु बली निरबल करि डारी । डारी गही डिगन डर नारी ॥

वह सुकोमलाङ्गी नारी, अभी तक वियोग से सुलग-सुलग कर तीव्र श्वास छोड़ रही थी । उसके हृदय में बली स्नेह की उष्णता थी वह उसे चालित किये हुए थी । कहीं गिर न जाऊँ ऐसा अनुमान करके उस रूपसी ने डाली पकड़कर सहारा ले लिया ।

तप बर नूपर लागे पांइ ! पुहंची पुहंची पुहंचै जाइ ॥

उसका तन वियोग - संताप से अति क्षीण हो गया था । अत: उसके नूपुर पैरों पर आ गिरे थे और कोंहनी से ऊपर पहने जाने वाले आभूषण अब नीचे उतर कर पहुंची अर्थात् हाथ पर पहुँच चुके थे ।

दोहा ॥३५॥ सीसफूल सिर पर चढ्यौ, करनफूल है कांनं ।
अधर सुधा कौं जान कहि, पांनि करत है पांन ॥

वियोगावस्था में युवती का आभूषण शीर्षफूल शीर्ष पर जा पहुँचा था । कर्णफूल भी मर्यादित ही रहे । इसी दशा में, जान कवि कहते हैं कि सुन्दरी के अधरों के अमृत का पान जो प्रियतम को करना चाहिए था, उन अधरों पर सुन्दरी का स्वयं का हाथ ही रखा था ।

चौपई ॥३६॥ सेवन लगी तिया बैरागी । बहुरि बिरहु दुष गावन लागी ।
येक नाद पुनि विरहै सान्यौं । रूपवंत गावति मन-मान्यौ ॥

प्रेम में अत्यधिक आसक्त रूपमंजरी रोने लगी और फिर विरह से प्राप्त दु:ख का वर्णन गायन के साथ बताने लगी । रूपवती रूपमंजरी के हृदय में अब यह समझ आ चुकी थी कि किसी से भी विरह हो उस ईष्ट के प्रति जो 'नाद' होता है वह एक समान ही जन-जन में व्याप्त होता है ।

कौन न रीझै भिदैं न कौंन । रबि ससि थकित होंहि तज गौंन ।
जबहि कर्‍यो टोडी प्रकास । म्रिग रीझकै आयौ पास ॥

कभी न कभी, हर कोई किसी एक को भी चाहने लगता है । वह किसी के प्रति आकर्षण में बँध ही जाता है । रवि एवं शशि भी अपनी गति, किसी आकर्षण में मंद कर ही देते हैं । इस विरहावस्था में जो 'नाद' उत्पन्न हुआ वह 'टोडी' राग था । ज्यों ही इस प्रकार का राग प्रारम्भ हुआ उसके आकर्षण में रीझकर मृग खिंचकर समीप में चला आया।

जाकी धुंनि सुनि पसू बिमोहे । रीझत नाहिं सु मानुस को है ।।

जिस 'नाद' पर रीझ कर पशु तक विमुग्ध होकर खिंचे चले आते हैं, ऐसे 'नाद' को सुन कर जो भी रीझ नहीं सका है, आखिर वह मनुष्य किस प्रकृति का है ?

दोहा ॥३६॥ नाद भेद सुनि कुंवर कैं, तन आयौ परसेद ।
बूड्यो बूड्यो जात जिय, बिरहु करत उरछेद ॥

'नाद' के प्रभाव से राजकुमार के तन पर पसीना प्रकट हो गया । उसके हृदय में विरह का संताप अब छेद करने लग गया था । उसका हृदय अब डूबने-डूबने को हो गया था अर्थात् अब उसका हृदय 'सिन्क' करने लगा था ।

चौपई॥३७॥ फिरत बागु बनिंता बौरानी । नैंन सजल मुष बिरहु कहानी ॥
बैठे तपा निहारे चार । कियौ चौंप सौं जाइ जुहार ॥

बाग में प्रिय मिलन की चाह में फिर रही उस सुन्दरी पर उन्माद छा रहा था । उसके नयन सजल थे मुख से विरह के बोल-बोल कर व्यथा का वर्णन कर रही थी । उसने वहाँ पर चार तपस्वी बैठे देखे । उसने उत्साह के साथ उनके समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया ।

अपनी बिथा षरी सब भाषत । चौंरी लयें पंषारी राषंत ॥
देषि तपा चित उपजी दया । बोल्यो यहै आंनि मन दया ॥

फिर खड़ी होकर अपनी व्यथा सम्पूर्ण रूप में कह दी । वे तपस्वी अपने हाथों में 'चँवरी' के बालों से बनी 'चँवरी' और मोर के पंखों से बनी 'पंखारी' रखे हुए थे । उस युवती को इतना व्यथित देखकर तपस्वी के चित्त में दया आ गई और वह दयापूर्ण भाव के साथ यह कहने लगा ।

पूजी इंछ तिहारी माता । सो पैहै मन जिह रंग राता ॥

हे माता ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जायेगी । तुम्हारा मन जिसके रंग में रंग गया है, वह अभीष्ट तुम्हें प्राप्त होगा।

दोहा॥३७॥ जो गुरु की सेवा करै, इक मन इक जिय होइ ।
इच्छा पूजै प्रान की, चिंता रहे न कोइ ॥

मन को वशीभूत करके सम्पूर्ण भावों से तन्मय हुये हृदय से जो गुरु -मार्ग की सेवा करता है तो उसके प्राणों से तादात्म्य को प्राप्त हुई ऐसी इच्छा पूर्ण अवश्य होती है । साधक के मन में और कोई अन्य चिन्ता नहीं होनी चाहिए।

चौपई॥३८॥ तपा भेजि सिष कुँवर बुलायौ । रूपमंजरी पास बिठायौ ॥
गांठि दहुनि की लैकैं जोरी । कभूं न टूटै काहू ठोरी ॥

तपस्वी ने शिष्य को भेजकर राजकुमार को वहाँ बुला लिया । उसे रूपमंजरी के पास बैठा दिया । विवाह की रस्म के अनुरूप-दोनों की शंकाओं की गाँठों को खोलकर दोनों की आत्माओं के निर्मल छोरों को बन्ध लगा कर जोड़ दिया । इस प्रकार उन 'दोनों' को एक प्रेम-बन्धन में जोड़ दिया जिससे वे किसी भी स्थान पर कभी भी पृथक् न हो सके ।

पैमु गांठि पुनि गुरु की दई । षुलत न नैंकु महा धुरि गई ॥
अैसी कछु तिय की गति षेली । भेदु न सूझ्यों सषी सहेली ॥

उपदेशपूर्वक समात्भाव उत्पन्न करके प्रेम का गठबन्धन उसमें कर दिया । अब वह एकरसता की धुरी पर बाँध दिये गये, अब उनका प्रेम-बंधन अचल हो गया । विधाता ने कुछ ऐसा संयोग उपस्थित कर दिया कि रूपमंजरी

के इस प्रकार तपस्वी जनों के समीप पहुँचने तक की बात का ज्ञान ही, उसकी सखी-सहेलियों को नहीं हो सका ।

रहे अरध निसवाही पास । कीने काम - कलोल हुलास ॥

प्रिय राजकुमार के साथ रहकर रूपमंजरी ने, आधी रात के समय तक 'काम-केलि', उल्लास के साथ पूर्ण की।

दोहा ॥३८॥ ग्यान न्यान सागर चले, रूपमंजरी संग ।
तीनों गुरु परसाद तें, नांहि समावहि अंग ॥

तत्पश्चात् गुरु-प्रसाद से तीनों जने - ज्ञानसिंह, रूपमंजरी एवं मित्र न्यानसिंह साथ-साथ वहाँ से चल पड़े। प्रसन्नता के कारण उनके अंग फूले नहीं समाते थे ।

चौपई ॥३९॥ भौर भयौ घर गई न नारी । उपजी चिंत राइ मन भारी ॥
नगरी सगरी सोधत डोलैं । कहां गई को मुषहि न बोले ॥

राजभवन में वहाँ, सुबह होते ही देखभाल हुई कि रूपमंजरी घर पर नहीं पहुँची है । तब रूपमंजरी के पिता, राजा के मन में भारी चिन्ता उत्पन्न हो गई । उसने सम्पूर्ण नगरी में खोजबीन कर ली । सभी स्थानों पर जाकर रूपमंजरी के विषय में जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की गई । कहाँ गई ? यह पूछने पर किसी ने भी ज्ञान होने की स्वीकारोक्ति प्रकट नहीं की ।

परी रौर बहु पुर न समाई । तब मालनि सुनि रोबति आई ॥
बात सबै राजा सौं भाषी । कछु दूरी मन नाहि न राखी ॥

फिर पुर में ऐसा कोलाहल हुआ कि शोर मच गया । यह शोर सुनकर वह मालिन भी रोती हुई आ गई । राजा को उसने राजकुमार ज्ञानसिंह के प्रेम प्रसार की समस्त घटनाएँ वर्णित कर दीं । उस मालिन ने कुछ भी नहीं छिपाया।

पुहप माल नीलंबर भाव । भेदु सकल सुनि पायौ राव ॥

रूपमंजरी के द्वारा पुष्पमाल भेजने और नीलाम्बर पहनाने की घटनाओं का, सभी कुछ रहस्य स्पष्टत: बता दिया । मालिन से यह सब जानकारी मिल जाने पर राजा को स्पष्ट पता चल गया ।

दोहा ॥३९॥ राजा आयौ बाग में, तनीयां चढ़ी न हाथ ।
कर मीड़त आँसू ढरत, रूषन फोरत माथ ॥

राजा बाग में आ पहुँचा, किन्तु पुत्री प्राप्त नहीं हो सकी । वह पछता-पछता कर हाथ पीटने लगा । वह दुर्भाग्य पर निराश होकर वृक्षों पर माथा मार-मार कर विलाप करने लगा ।

चौपई ॥४०॥ सोधत सगरौ द्यौंस गंवायौ । षोज तबहिं काहू कर आयौ ।
राजा चल्यौ जोरि कैं सैंन । पाछैं षोज जांहि दिन-रैंन ॥

पूरे दिन तक रूपमंजरी की खोज की गई किन्तु कुछ भी पता नहीं चला । अन्त में किसी स्थान पर उसके होने की खबर राजा को मिल गई । राजा ने अपनी सेना साथ में ली और रूपमंजरी तथा राजकुमार के ''पद चिह्नों'' को पहचान कर उनका अनुसरण करता हुआ चल पड़ा ।

दोइ चारि बाढिकैं युद्ध चाहि । जुगत म्रिंत तिन्ह छाडत नांहि ।
नैंकु निकटि आवन नही पावै । बांनांनि कैं बर मारि गिरावैं ॥

कोई कोई दो चार सैनिक राजा से भी आगे निकल कर रूपमंजरी और राजकुमार के समीप तक पहुँच कर युद्ध करने लगे । किन्तु राजकुमार ज्ञानसिंह एवं उसका मित्र न्यानसिंह ऐसे सैनिकों को युद्ध करके मार डालते थे । वे पीछा करके समीप पहुँचने की चेष्टा करने वाले सैनिकों को बाण-वर्षा करके मार डालते थे ।

राजै सुन्यौ जु मारत जाहि, । कोऊ उनको पकरत नाहिं ।

राजा के कानों तक यह समाचार पहुँच गया कि, वे दोनों अपना पीछा करके पकड़ने की चेष्टा करने वाले सैनिकों को मार डालते है । अत: कोई भी उनको पकड़ पाने में सफल नहीं हो पा रहा है ।

दोहा ॥४०॥ राजा असु कौं हांकिकैं, आपुन पुहच्यौ आइ ।
कठिन भई जब कुँवर कौं, कीजै कौन उपाइ ॥

यह सुनकर राजा स्वयं अश्व पर सवार होकर राजकुमार ज्ञानसिंह, रूपमंजरी और न्यानसिंह को पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा और पीछा करते-करते उन तक पहुँच्र गया । राजा को देखकर अब कुँवर के सम्मुख बड़ी समस्या उत्पन्न हो गई कि अब वह कौन सा उपाय करे ।

चौपई ॥४१॥ भाजि न जानैं लर्‌यौ न जाइ । लरैं पिता सौं ना गति पाइ ॥
सोचत तपा येक डिठ आयौ । न्यानसिंघ ताकैं ढिंगु आयौ ॥

राजकुमार भागना जानता नहीं था । पुन: यहाँ रूपमंजरी के पिता से, लड़ाई करने से श्रेष्ठ गति का लोप हो जाता । जब वह उपाय खोज रहा था तभी उसे तपस्वी वहाँ दिखाई दिया । राजकुमार ज्ञानसिंह के साथ वाला न्यानसिंह उस तपस्वी के समीप पहुँचा ।

हाथ जोरि कैं बिनती कीनी । लेहु बचाइ और तुम्ह लीनी ।
तपा मंत्र पढ़ि अैसो डार्‌यो । रूप फिर्‌यौं लहिये न निहार्‌यो ॥

वह हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगा कि, 'हम तुम्हारी सहायता लेना चाहते हैं । (हम आपके आश्रय की आड़ लेना चाहते हैं) तपस्वी ने मंत्र विचार कर ऐसा उपाय किया कि वे दंपति राजकुमार और रूपमंजरी दोनों का रूप पहचाना नहीं जा सका ।

पहले रूप कहूं छपि गये । दंपति जोगी जोगनि भये ॥

उन दोनों का राजकुमार और राजकुमारी वाला पहले का रूप छिप गया । वे दोनों जोगी और जोगिन दंपति बन गये ।

दोहा ॥४१॥ राजा पहुंच्यौं धाइ कैं, तपा निहारे आइ ।
हाथ मलत आंसू चलत, गये सू कहां बिलाइ ॥

ज्योंही अश्व पर सवार राजा वहाँ पहुँचा तो उसने वहाँ इन सभी तपस्वियों को निहारा । वह राजकुमार और रूपमंजरी को पकड़ने में असफल रहने के कारण पश्चात्ताप कर रहा था । उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे । राजा आश्चर्यपूर्वक यह देख रहा था कि वह रूपमंजरी विलुप्त होकर कहाँ चली गई ?

चौपई ॥४२॥ राजा कह्यौ तपा कै हेरे । इतहिं जात हे तसकर मेरे ।
तपा कह्यो को तक्यो न जात । कहा बनाऊं झूठी बात ॥

राजा ने तपस्वियों से पूछा कि, "आपने देखा है, मेरे तस्कर इधर ही की दिशा में जा रहे थे । मैं उनका पीछा कर रहा हूँ ।" तपस्वी ने कहा - "हमने इधर से जाते हुए किसी को भी नहीं देखा है । मैं झूठी बातें क्यों बनाऊं।"

राजा कह्यो न मानस आहि । गंध्रब उठे गये लै ताहि ।
राजा फिरि आपुनैं घरि आयौ । गुरु प्रसाद ते जीव बचायौ ॥

राजा ने कहा, "ऐसा मालूम पड़ता है कि वे कोई सामान्य मनुष्य नहीं होंगे । उन्हें गन्धर्व उठा कर ले गये होंगे। इसके बाद राजा अपने घर लौट आया । उसने यही माना कि गुरु के प्रसाद से मेरी जान बच गई । अन्यथा गन्धर्व चाहते तो जीवन हर सकते थे ।

बरन फिरे बिनु अमर न होइ । गुरु बिन रूप फिरावे कोइ ॥

अन्यथा मैं कोई अमर तो हूँ नहीं । गुरु की कृपा से ही रूपमंजरी लौट कर वापिस आ सकेगी । गुरु की कृपा के बिना और कोई ऐसा सामर्थ्यवान् नहीं है जो कि उसे वापिस लेकर आ सके ।

दोहा ॥४२॥ मोह क्रोध - तिसना लु बिधि दुज्जन पहुंचे आइ ।
जो गुरू पलटे रूप तब तौ जिय होइ बचाइ ॥

दुर्जनता के प्रभाव से लोभ, तृष्णा मोह और क्रोध मनुष्य की हानि करने को उपस्थित रहते हैं, किन्तु श्रेष्ठ विवेक देने वाले गुरु के उपदेश पर चलने से श्रेष्ठ जीवन की रक्षा संभव होती है ।

चौपई ॥४३॥ राजा गयौ तबहि चित चाइ । तीनौं गुरू पग लागे धाइ ।
तैं हमकौं दीनौ ज्यौं दान । तोही तै घर रहे परान ॥

रूपमंजरी का पिता, जो कि राजा था मन में संतोष करके वापिस लौट गया । इधर इन तीनों राजकुमार ज्ञानसिंह, रूपमंजरी एवं न्यानसिंह ने तपस्वी गुरु के चरणों में प्रणाम किया । उन्होंने विनतीपूर्वक निवेदन किया कि, "आपने ही हमको जीवन दान दिया है । आपकी कृपा से ही, हमारे अपने-अपने घर में, प्राण सुरक्षित रह सके हैं।"

बिदा होई मारग घर लीनो । बिहंसत हसंत जात है तीनों ।
केतक दिन पाछैं घर आये । मात तात मिलि कै रंहिसाये ॥

तत्पश्चात् गुरु से विदा मांग कर तीनों जनों ने अपने को पहुँचाने वाले मार्ग पर प्रस्थान किया । वे तीनों प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुये चले जा रहे थे । अनेक दिनों तक वे निरंतर मार्ग में चलते रहे, तब कहीं जाकर वे अपने घर पहुँच गये । माता और पिता इनसे मिलकर उत्साह से भर गये ।

बंटी बधाई बाजे बाजे । पुत्र - पिता द्वै राजे - राजे ॥

इनके आगमन की प्रसन्नता में सभी जनों ने बधाइयाँ दीं और प्रसाद भी प्राप्त किया । पिता और पुत्र राज्य भर में सुशोभित हुए ।

दोहा ॥४३॥ काम केल निस दिन करैं, रूपमंजरी ग्यांन ।
देत पयालौ मंजरी, कुँवर करत है पांन ॥

राजकुमार और रूपमंजरी दोनों प्रेमी रात-दिन कामकेलि करने लगे । रूपमंजरी रूप मद्य के प्याले भर-भर कर राजकुमार को पीने के लिये देने लगी ।

चौपई ॥ ४४॥ जौ लों जीये चैंन रसु कीये । येक संग अमृत हितु पीये ॥
काम-कलोल बैस मद माते । येक घरी हू होत न हाते ॥

वे जब तक जीवित रहे, चैन से एक समान आनन्द के अमृत का पान करते रहे । अपनी वय के अनुरूप

यौवन के आनन्द प्राप्त करते हुये काम क्रीड़ायें करते रहे । वे एक घड़ी (एक पल) के लिये भी एक दूसरे से वियुक्त नहीं हुआ करते थे ।

अैसे चैंन दयौ करतार, कहत जान आवत न विचार ।
करनहार बिनु कौंन निबाजै, वैसी चिंत कौंन तैं भाजै ॥

जान कवि कहते हैं कि विधाता ने उन्हें, इस प्रकार का सुख - संतोष दिया कि कोई सोच भी नहीं सकता अर्थात् अपरिमित सुख उन्हें दिया । जगत् के नियन्ता की कृपा के बिना ऐसी दूसरी शक्ति कोई नहीं हैं जो सबको सुखी रख सके ।

सब बातनिं समरथ है करता । आनंद कौ भरता दुष हरता ॥

जैसी उनको चिंता थी उसे ईश्वर के बिना और कोई किस प्रकार दूर कर पाता । ईश्वर ही दुःख का हरण करने वाले और प्रचुर मात्रा में आनन्द देने वाले हैं । ईश्वर ही सर्वशक्तिमान् हैं । वह असम्भव को भी सम्भव करने में समर्थ है ।

दोहा ॥४४॥
सुलिप कथा यहु जान कहि, रूपमंजरी नाम ।
स्रवनन सुनी मुष उच्चरी, लगे तीन ही जाम ॥

जान कवि विरचित यह रूपमंजरी नाम की स्वल्प कथा है, जो उनके द्वारा मुख से बोल कर सुनाई गई थी और इसकी तात्कालिक रचना में तीन प्रहर का समय ही लगा है ।

कथा रूपमंजरी की संपूरन भई लिषतं फतेहचंद ताराचन्द का डीडवानीयाँ संवत् सतरह सौ । १७८४ मिती चैत बदी ७ मंगलवार पोथी पूरी करी सन् ११४० । श्री श्री श्री श्री

कवि जान कृत
कथा कामरानी - प्रीतमदास की

॥प्रारंभ॥

॥दोहा १॥ पर्थम सोई सुमिरिये, जिन सिरज्यो सैंसार ।
पलक माहिं सब कछु भयौ, होत न लागी बार ॥

सर्वप्रथम मैं उन सर्व शक्तिमान् का स्मरण करता हूँ, जिन्होंने एक पलक झपकने के समय की अल्प अवधि में ही यह इस प्रकार का चराचरमय संसार रच दिया।

॥दोहा २॥ नभि धर ससि रबि उडिन गिर, पवन, नीर बन भेद ।
रचे अकेलैं आपही, रंचक भयो न खेद ॥

उस सर्व शक्तिमान् की महिमा कैसी निराली है कि जिसने स्वयं अ़केले ही बिना किसी कष्ट एवं परिश्रम के विभिन्न स्वरूपों से युक्त आकाश, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, पर्वत, पवन, जल और वन उपवन आदि रच डाले।

॥दोहा ३॥ को चातुर कोऊ मुगध, धर्मी को पापिस्ट ।
नाहिं करी करतार सब, येक भांति की सिस्ट ॥

जगत् निर्माणकर्ता ने समस्त सृष्टि जो रची है वह सब एक प्रकार के समान रूप-रंग और गुणों की न रचकर विभिन्न भेदों से युक्त रचनायें की हैं । कोई प्राणी तो चतुर बना दिया है, किसी प्राणी को मूर्ख बना दिया है, किसी को धर्म पर चलने वाला बनाया और किसी को पाप कर्मी बना दिया है ।

॥दोहा ४॥ दोम महमंद सुमिरिहू, उनतें दूजी ठौर ।
नबी रसूल जिते भये, है सब मै सिर मौर ॥

परमब्रह्म परमेश्वर उस सर्वशक्तिमान् अल्लाह के स्मरण के पश्चात् पुन: द्वितीय बार मैं जगत् के उद्धारकर्ता हज़रत मौहम्मद साहब का पावन स्मरण करता हूँ, जो उत्तम समय में अवतरित हुये समस्त नबी, रसूल और अन्य देवदूतों में सर्वश्रेष्ठ हैं ।

||दोहा ५|| अबहि बखानौ जान कहि, येक बात अभिराम ।
पंच सजन कौ भेदु है, मित्र कथा इह नाम ||

यहाँ श्री न्यामत खाँ चौहान उपनाम 'जान' रचनाकार कहते हैं कि इस समय जो आध्यात्मिक चेतनाप्रद उपदेश का व्याख्यान, प्रस्तुत सुन्दर बातवाली काव्यमय कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें पाँच विभिन्न गुणों से युक्त सज्जन मित्रों की कथा शीर्षक वाली रचना का प्रस्तुतीकरण है ।

||चौपई १||

पंच मिंत बसि है मुलतान । अब हौं तिन कौ करों बखान ।
राजकुँवर इक छबि की रास । नाव ताहि कौ प्रीतमदास ||

मुल्तान नाम के नगर में पाँच मित्र निवास करते थे, उन्हीं के श्रेष्ठ आचरण करनी वाली घटनाओं का वर्णन यहाँ मैं कर रहा हूँ । उन पाँचों में से एक प्रीतमदास नाम का राजकुमार था जो कि रूप-शोभा का भण्डार था ।

इक सौदागर सुत धनवंत । जाकै लछी आहि अनंत ।
येक सुरंगया देत सुरंग । तिहं पहुँचै जित होत उमंग ।।

उनका साथी एक सौदागर का पुत्र था, जो धनवंत था, तथा अकूत (अगणित) धन संपदा का स्वामी था । इनका एक साथी सुरंग खोदने का विशेषज्ञ था, वह जिधर निकल पड़ता उधर उसके कार्य-कौशल को देखकर लोगों में उत्साह-आनंद भर जाता था ।

इक बढई - सुत पूरन ग्यांन । कोऊ ना जग वाहि समान ।
इक काछी सुत आछी कांति । हार बनावत है बहु भांति ।

उनके साथ तीसरा मित्र एक बढ़ई का पुत्र था, जिसे बढ़ईगिरी का पूर्ण ज्ञान था । उसकी गणना सर्वश्रेष्ठ बढ़ईयों में की जाती थी । एक चौथा मित्र काछी का पुत्र था, वह सुन्दर कान्ति से युक्त था । वह विविध प्रकार के उत्तम हार बनाने में प्रवीण था ।

येक्वै संग रहै ये पंच । बिछुरत नाहीं कबहू रंच ।
राजकुंवर कौ छांडहि नांहिं । पास रहत ज्यौं घट संग छांहि ।।

ये पाँचों मित्र सदैव एक साथ रहा करते थे और किसी भी समय, क्षणमात्र भी अलग होकर नहीं रहते थे । इस प्रकार चारों मित्र, अपने पाँचवें मित्र राजकुमार का साथ नहीं छोड़ते और सदैव उसी प्रकार रहते थे, जिस प्रकार कि किसी भी पदार्थ घट आदि के साथ छाया रहती है ।

राजकुंवर ना करत विवाहि। देख बरौ यहु चितु मैं चाहि ।
ब्याह न करिहैं चारौ यार। जौ लौं करिहे न राजकुंवार ।।

राजकुमार अभी तक विवाह करने की स्वीकृति नहीं देता था । इस विषय में इन पाँचों के चित्त में अत्यधिक चाह यही थी कि राजकुमार विवाह कर ले । राजकुमार के चारों मित्रों ने भी यह संकल्प कर लिया था कि जब तक राजकुमार विवाह नहीं कर लेगा तब तक वे चारों मित्र भी विवाह नहीं करेंगे ।

कुंवर कह्यो मिंतन सौ बात । ब्याप्या मदन रह्यो नहिं जात ।
देस कांवरू अब हम जैहैं । रूपवंत तिय मत उत पैहैं ।।

एक दिन राजकुमार ने अपने उन मित्रों से कहा कि मुझ पर कामदेव ने प्रभाव स्थापित कर लिया है, अब मैं रति के बिना चैन से नहीं रह सकूँगा । अब हम कामरूप (आसाम) नगर को प्रस्थान करेंगे । संभव है कि वहाँ कोई रूपवती प्रिया स्त्री प्राप्त हो जावे ।

चले कांवरू पांचौ यार । सौदागर द्रब लयौ अपार ।
घोरे लये संग भल भले। सौदागर ह्वै कैं सब चले ।।

पाँचों मित्र कामरूप प्रदेश में पहुँचने के लिए चल पड़े । सौदागर के पुत्र ने अपार धन अपने साथ ले लिया । पाँचों मित्रों ने सौदागरों का सा रूप बना लिया और बहुत श्रेष्ठ घोड़ों पर सवार होकर चल पड़े ।

जात जात केतक दिन भये । नगर कावरू तब ये गये ।
कौतग देखत हैं पुर माहिं। कबहुं सरोवर उपवन जाहिं ।।

चलते-चलते बहुत समय व्यतीत हो गया । तब वे कामरूप नगर में पहुँच गये । नगर में पहुँच कर उन्होंने अद्‌भुत सुन्दरता वाले सरोवरों और उपवन आदि को कौतूहल के साथ देखा ।

कौतिग देखत देखत यार । आये येक देहुरा बार ।
भीतर पैठे पूजा चाइ। मूरति देखि रहे भरमाइ ।।

कौतूहल के साथ सुन्दर - सुन्दर स्थलों एवं वस्तुओं आदि का अवलोकन करते करते वे पाँचों मित्र एक देव मंदिर के समीप पहुँच गये । वे मंदिर में पूजा करने की इच्छा मन में लेकर अन्दर प्रविष्ट हुये । वहाँ स्थित सुन्दर मूर्त्ति को देखकर वे आश्चर्यजनक रीति से मोहित हो दिग्भ्रमित हो गये ।

येक तीया की देखी मूरत । कुंवर बिकांन्यौ उहीं महूरत ।
निमसकार पूजा सब भूली। द्रिग आगै सरसौं सी फूली ।।

राजकुमार ने वहाँ उस एक स्त्री की सुंदर मूर्त्ति को देखा और उसके रूप-सौन्दर्य की छटा से पूर्णत: मुग्ध हो गया। वह राजकुमार पूजा-साधना के अङ्गों नमस्कार आदि अर्चन - विधि को भूल गया । उसके नेत्रों के आगे सरसों सी फूल गई अर्थात् चित्त में उस मूर्त्ति का मुग्धकारी प्रभाव ऐसा व्याप्त हो गया कि उसे कुछ भी स्मरण या विवेक नहीं रहा । जिस प्रकार फूली सरसों की शोभा देखकर मनुष्य अपनी सुध-बुध भूल जाता है, उसी प्रकार का प्रभाव उस राजकुमार पर हो गया था ।

।।दोहा ६।। मगन भयौ जब तें तकी; बाम अनूपम भेस ।
भूलि गयौ है कुंवर कौं; ब्रह्मा बिस्न महेश ।।

जब से राजकुमार ने उस स्त्री की मूर्त्ति को देखा तब से वह उसके अनुपम रूप को देखकर मुग्ध हो गया । उस मूर्त्ति को देखकर राजकुमार अपनी सुध-बुध खोकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश के भेद को भी भूल गया ।

।।चौपई २।। लिख्या हुतौ मूरत पर नाम । यहु मूरत है रानी काम ।
देखत देखत ह्वै गई सांझ । मीत कहत है आपुन मांझ ।।

उस मूर्त्ति पर नाम लिखा हुआ था । यह मूर्त्ति कामरानी की थी । मित्रों ने आपस में कहा कि इस मूर्त्ति को देखते-देखते शाम हो गई है ।

चलहुं कुंवर जू डेरा जांहिं । पानी पीवहिं भोजन खाहिं ।
पाहन से तौ कैसी पीति । समझत नांहिं नेहु की रीति ।।

चलो कुंवर ! अब अपने डेरे पर चलकर खाना-पीना प्राप्त कर लें । पत्थर की इस स्त्री से कैसा प्यार ! वह तुम्हारी स्नेह की रीति नहीं समझेगी ।

जौ तुम याकै परिहो पाई । हाथ पकरि ना लेत उचाई ।
वा काजैं द्रिग आंसू परिहैं । वाके नैन नीर ना भरिहैं ।।

अगर तुम इसके पाँव पड़ोगे तो भी यह तुम्हें संवेदनहीन होने के कारण हाथ पकड़कर ऊपर नहीं उठायेगी । अगर पत्थर की इस सुन्दर मूर्त्ति पर मुग्ध होकर इसके लिए तुम्हारी आँखे आँसू बहायेंगी, तब भी तुम्हारी दीन-हीन दशा को देखकर उसकी आँखों में आँसू नहीं छलछलायेंगे ।

जो तुम्ह बक हो सब दिन रात, येक तुम्हारी सुनै न बात ।।
जो तुम पूछौ बार अनेक, तुमकौ उत्तर देत न येक ।।

अगर तुम उस मूर्त्ति के सामने उसकी सुन्दरता पर मुग्ध और आसक्ति के कारण किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर दिन रात भी बोलते रहोगे, तब भी यह तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनेगी । अगर तुम उससे प्रश्न पर प्रश्न भी पूछते

रहोगे,यह तुम्हें एक बार भी उत्तर नहीं देगी ।

नैन सहत यहु अंधरी आहि । कहुं रंचक सूझै नां ताहि ।
स्रवन आहि पैं सुनंत न नेक । सिल्पकार कीने है छेक ॥

पत्थर की कुराई से बनी आँखें होते हुए भी यह अंधी है, तथा इसे तनिक भी दिखाई नहीं देता है । शिल्पकार ने इसके कानों के स्थान पर छिद्र तो कर दिये हैं, परन्तु फिर भी यह कुछ भी नहीं सुन पाती है ।

करी गुंग न देखी भावै । अैसो होइ वहै मन लावै ।
कुंवर कहै जिन याहि बखानहु । न्यारौ पंथ पैम कौ जानहु ॥

जो गूंगा होगा व देखने में असमर्थ होगा, वही इस पत्थर की मूर्त्ति के प्रति मुग्ध होगा । कुंवर ने कहा कि मेरे द्वारा इस सुन्दर मूर्त्ति पर रीझ जाने को लेकर अब इस प्रकार के आलोचना प्रत्यालोचना भरे व्याख्यान मत दो । प्रेम का पंथ ही निराला होता है ।

जौ मन मोहन नाहिन चाहै । तौऊ' बिरही पैमु निबाहै ।
सुनहु मिंत हम तुम ना साथ । मेरौ है पाहनतर हाथ ॥

यदि मन का मोहन (विवेक) नहीं चाहे तब भी विरही प्रेम के प्रति कर्त्तव्य का निर्वाह तो अवश्यमेव करता है। हे मित्र सुनो - अब हमारा तुम्हारा साथ नहीं हैं, क्योंकि हमारी लगन इस मूर्त्ति में है । मेरा हाथ तो इस पत्थर की मूर्त्ति के नीचे दबा है अर्थात् इसने मुझे विवश कर दिया है, मैं इसके अधीन हूँ ।

बिरहु पहार पर्‌यो सिर आइ । येक पैंडहू चल्यो न जाइ ।
मिंतन कह्यो जो बिछुरै छांहि । तौ हम तोहि छांडि कैं जांहिं ॥

विरहरूपी पहाड़ अब मेरे ऊपर आकर गिर गया है, अब मुझ से एक कदम भी नहीं चला जाता है । मित्रों ने राजकुमार से कहा, कि अगर घट या शरीर से छाया अलग हो जाती है, तब ही हम तुम्हें छोड़ कर जा सकते हैं, अन्यथा नहीं ।

अंधकार छवि जैहै छाहि । हम तुमहूं संग छाडै नाहिं ।
जौ तुम इत हौ पूजारे । तुमकौ पूजहिं होंह न न्यारे ॥

अंधकार होने पर छाया छिप जाती है, किन्तु, वह केवल प्रकाश रहने तक ही साथ देती है, हम तुम्हारा साथ विपत्ति आने पर भी नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि हम आत्मवान् हैं । अगर तुम इस मूर्त्ति के पुजारी हो गये हो, तब हम भी तुम्हारी पूजा करेगें और अलग नहीं होंगे ।

यहै कर्‌यो हम चित में नेम । तुम संग पाहन तुम संग हेम ॥

यह हमने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया है कि तुम्हारे साथ ही हम पत्थर हैं और तुम्हारे साथ ही सोना (स्वर्ण) अर्थात् तुम्हारे संग ही हम मूल्यवान और मूल्यरहित हैं ।

॥ दोहा ७॥ जो तुम पूजहु और कौं; तो हम पूजहि तोहि ।
यहै धर्म मेरैं बड़ौ; बान परी यहु मोहि ॥

अगर तुम किसी और की पूजा करोगे, तब भी हम तुम्हें ही पूजेंगे । यही धर्म हमारे लिए बड़ा है, यही हमारी आन-बान है, धर्म-मर्यादा है ।

॥चौपई ३॥ पाचौं रहे देहुरै रैंन । प्रीतम दास कह्यो यहु बैन ।
जिह तीय की यह मूरत गढ़ी । ताकी चिंत मोहि चित चढ़ी ॥

पाँचों मित्र रातभर उस मंदिर में रहे, तब राजकुमार प्रीतमदास ने उनसे ये वचन कहे । जिस किसी ने भी इस स्त्री की यह मूर्त्ति तराश कर बनाई है, उस स्त्री को खोजने की मेरे मन में चिंता हो रही है ।

याकी करहु कहूं तुम दौर । पावहू तौ जिय आवै ठोर ।
जो यहु तीय नहीं जग मांहिं । तौ यहु मूरति बनतिहि नाहि ॥

तुम सब जाकर उसकी (स्त्री) खोजबीन करो, उसके मिलने पर ही मुझे चैन आयेगा । अगर यह स्त्री संसार में नहीं होती तो यह मूर्त्ति बनती ही नहीं (अर्थात् यह स्त्री संसार में जीवित है।)

सुनी बात यहु चारौं मिंत । लोम जरन हुतासन चिंत ।
यहै कह्यो मन मै धरि धीर । हम दौरे विधि हरिहै पीर ॥

जब चारों मित्रों ने राजकुमार की यह बात सुनी, तब उनके रोम-रोम में चिंता की अग्नि जलने लगी । उन्होंने यह सोचकर मन में धीरज धरा कि हम उसे (स्त्री को) खोजने जायेगें और इस कार्य में ईश्वर हमारे कष्ट दूर करेगा ।

केंहू केंहू रैंन बिहाई । जोत भई रबि किरन लखाई ।
पूछंन निकसे चारों यार । उतहीं छाड़े राजकुँवार ॥

जैसे तैसे करके दु:खभरी रात्रि व्यतीत की तब कहीं जाकर सुख की आशा देने वाले प्रात: कालीन सूर्य की किरणें दिखाई दीं । वे चारों मित्र राजकुमार को वहीं छोड़कर उस स्त्री की खोजबीन के लिए निकल पड़े ।

फिरत फिरत पुरखा इक पायौ । तिन यहु सगरौ भेद बतायौ ।
राजा येक नांवु हरिदास । इततें जोजन बसै पचास ॥

खोजबीन के लिए घूमते-घूमते उन्हें एक पुरूष मिला। उन चारों ने उस पुरूष को राजकुमार व उस स्त्री की मूर्त्ति का सारा भेद बताया । उस पुरूष ने सारा भेद जानकर उन्हें (चारों मित्रों को) बताया कि यहाँ से (कामरूप से) पचास योजन की दूरी पर हरिदास नाम का एक राजा निवास करता है । (एक योजन =8 मील)

रानी काम सुता कौ नाम । रूपवंति अति ही अभिरांम ।
यहं नगरी कौ राजा राम । रूप सुन्यो जब रानीं काम ॥

उसकी पुत्री का नाम कामरानी है, वह अतीव रूपवती और सुन्दर है । इस नगरी के राजा राम ने जब कामरानी के रूप सौन्दर्य के बारे में सुना तब वह उसको पाने के लिए लालायित हो गया ।

येक चितेरन दई पठाई । ली मगाइ मूरति चित राइ ।
राजा कै ज्यो मै अति भाई । तब पाहन की और गढ़ाई ॥

राजा राम ने एक चित्रकारिन को वहाँ भेजकर कामरानी का चित्र बनवा कर मँगवा लिया । राजा राम को कामरानी का वह चित्र बहुत पसंद आया और उसने उस चित्र की नकल करवाकर एक पत्थर की मूर्त्ति बनवा दी ।

लै वह रखी देहुरे मांझ । पूजा राइ करै दिन सांझ ।
कहि पठयो हरिदासहि राम । मोकौ ब्याहो रांनी काम ॥

उस मूर्त्ति को राजा राम ने मंदिर के बीच में रखवा दिया तथा वह राजा दिन रात उसकी पूजा करता था । राजा राम ने हरिदास के यहाँ यह संदेश भिजवाया कि कामरानी का विवाह मेरे साथ करो ।

जो तुम देहु न रानी काम । तौ हम तुम मैं ह्वै है संग्राम ।
सोई जीतत है संग्राम, ह्वैहै जूं जाके संग्राम ॥

अगर तुमने कामरानी के साथ मेरे विवाह से इन्कार किया तो हमारे व आपके बीच युद्ध होगा । युद्ध में वही जीतता है जिसके साथ भगवान् राम होते हैं जो कि सद्गुणों के स्रोत एवं मर्यादा के परिपालक हैं ।

कहि पठयो ऐसैं हरिदास । काहे राखत झूठी आस ।
हम तुम कबहूं भयौ न साक । कहां सु अंबुवा कहां पलास ॥

हरिदास ने राजा राम को इस प्रकार का संदेश भिजवाया है कि तूं झूठी आशा रखता हैं कि युद्ध में जीत कर कामरानी से विवाह कर लेगा । मेरा और तुम्हारा कोई मेल संभव नहीं है, क्योंकि कहाँ सर्वगुण सम्पन्न आम और कहां

ढाक के तीन पात । तुम हमारी बराबरी नहीं कर सकते ।

||दोहा ८ || बांभन बांभन सांक है, खत्री खत्री होत ।
बैस बैंस सूँ हिलि मिलै, सूद्र सूद्र कैं गोत ||

ब्राह्मण - ब्राह्मण का तो मेल है तथा क्षत्रिय-क्षत्रिय ही होता है, वैश्य-वैश्य से मिल जाता है तथा शूद्र - शूद्र के गोत्र एक ही होते हैं ।

||चौपई ४|| राम सुनी जब अैसैं बात । तब तें बहुत भयो दुख गात ।
केत करावति दये पठाई । धीहरि दासहिं लावहु जाई ||

जब राजा राम ने हरिदास के इस प्रकार के वचन सुने तो उसे बहुत दु:ख हुआ । राजा राम ने हरिदास की पुत्री कामरानी को लाने के लिए अपने प्रमुख सिपाही व सैनिक भेज दिये ।

सौदागर है कैं उतर हौ । अपनौ भेद न काहू कहौ ।
जो कहु पूजै घात तिहारी । तौ लै आवहु राज दुलारी ||

राजा राम ने उन सैनिकों व सिपाहियों से कहा कि तुम सब वहाँ सौदागर के भेष में जाना तथा अपने बारे में किसी को कुछ भी भेद मत बताना । अगर हरिदास की नगरी में तुम्हारी घात लग जाये तो उसकी पुत्री कामरानी को ले आना ।

तुमते जो मै प्यारी पाई । तुम सौ करिहौं बहुत भलाई ।
सौदागर है रावत गये । अपने भेद न काहू कहे ||

अगर तुम सैनिकों व सिपाहियों से मैंनें अपनी प्रिया (कामरानी) प्राप्त की, तो मैं (राजा राम) तुम्हें मालामाल कर दूंगा । तब सौदागर का भेष धारण करके सैनिक व सिपाही हरिदास की नगरी में गये तथा किसी को भी उन्होंने अपना भेद नहीं बताया ।

निस बासुर वा नगरी रहैं । कछु घात पै नाही लहैं ।
येक दयोस बहुरानी काम । गई हुती थौतिग आराम ||

रात-दिन राजा हरिदास की नगरी में रहने पर भी वे सैनिक व सिपाही घात(षड्यन्त्र) लगा नहीं पाये। एक दिन कामरानी सैर व विश्राम के लिए उपवन गई ।

सुनत बात रावत उत गये । लै रानी कौ मारग भये ।
संग आनी ही राजा धाइ । ताकै संग तुरंग चढ़ाइ ॥

यह बात सुनते ही राजा राम के सैनिक वहाँ गये तथा कामरानी का अपहरण करके राजा राम की कामरूप नगरी की तरफ चल पड़े । रानी (कामरानी) के साथ राजा हरिदास की धाय भी थी, उसको भी रानी के साथ राजा राम के सिपाहिसों ने घोडे पर बिठा दिया ।

सौ रावत रानी संग दये । कह्यौ धन तुम जौ लै गये ।
मारवा मैं पल गहरन लावहु । रानी कूं लै राइ मिलावहु ॥

उन सिपाहियों ने सौ विशेष सैनिक कामरानी के साथ भेज दिये (सुरक्षा के लिए) और उन्हें यह निर्देश दिया कि इस बहुमूल्य रानी को ले जाने का जो कार्य तुम कर रहे हो, उसको बहुत सजगता से पूरा करना । रानी को ले जाते समय मार्ग में तनिक सी भी देर नहीं लगने देना । तुम लोग रानी को शीघ्रतापूर्वक ले जाकर राजा राम से मिलवा दो ।"

हम दीनौ है ज्यौं नौछावर । जो पूजै राजा भी भांवर ।
रानी लै बैठौने आछै । रावत सहस रहे है पाछै ॥

हमको राजा ने जो धन दिया है उसके प्रति हमारा भी यह कर्त्तव्य है कि उससे राजा की भाँवरे रानी से पूरी हो जायें । उन सौ सैनिकों ने रानी को साथ लेकर भली भाँति प्रस्थान किया, और उनके पीछे हजार सैनिक भी रक्षा के लिए चल दिये ।

ये तौ हरीये हरीये जांहि । कहू संक नाहीं मन मांहि ।
जौ अपनौ मन रज पर आनै । सो जीय कौ रज ही सम जानै ॥

अब ये सैनिक बड़ी प्रसन्नता व उमंग से इस भाँति जा रहे थे कि मन में तो उसको समझा जा सकता है, लेकिन कहा नहीं जा सकता । जो अपने मन की प्रसन्नता के लिए कार्य कर रहा हो उसे चाहिए कि दूसरे जीव की प्रसन्नता को भी अपने समान ही अनुभव करे ।

रज सत होई न जाकै हीय । ताकौ प्यारौ लागै जीय ।
रौर परी नगरी मैं भारी । तब राजा कीनी असवारी ॥

जिसके हृदय में सात्विक गुण के साथ में अपने सुख के लिए साधन इकट्ठा करने का भाव नहीं है, वह किसी जीव को नहीं भाता है । प्रत्येक जीव को ऐसे आदमी का कार्य अच्छा लगता है जो कि अनैतिक न हो । अब चूंकि रानी को ले जाने का कार्य अनैतिक था, इसलिए उस नगरी में भारी कोलाहल मच गया, क्योंकि रानी को अपहरण करके ले जाने की बात राजमहल में पहुँच गई, जिससे रानी को बचाने के लिए राजमहल के सारे लोग दौड़ पड़े । तब राजा हरिदास ने घोड़े पर सवारी की ।

केतक मानस पहुंचे ताते । जुध मचायौ अधिक उलातें ॥
ये तौ सगरे लीनें मार । रावत जीते जाहि मुंछार ॥

और भी न जाने कितने मनुष्य क्रोध से वहाँ पहुँचे और युद्ध किया अर्थात् भीषण संग्राम शुरू हो गया । लेकिन राजाराम के एक हजार रावत सिपाहियों ने हरिदास के सभी सैनिक मार दिये तथा वे जीत गये ।

॥दोहा॥९. चले जात हैं चैन सो, राजा पै जुझार ।
जै पाछैं तें पुहंचि हैं , तिनहिं लेहिं फिरि मार ॥

जो सौ सैनिक रानी को ले जा रहे थे, वे जुझारू सैनिक अपने राजाराम की ओर बढ़ते जा रहे हैं, उनका पीछा करने के लिए हरिदास की सेना के जो लोग जाते हैं उनको वे सैनिक लौटकर मार डालते हैं ।

॥चौपई ५॥ सुनी बात राजा हरिदास । सगरे लोग बुलाये पास ॥

जब राजा हरिदास ने अपने सैनिकों के मारे जाने की बात सुनी, तो उसने सभी लोगों को अपने पास बुलाया ।

येक मतौ करि सब लै धायै । रावत है तित राजा आयै ।
मिले जुगल दल जुध मचायौ । दिन ते निसकौ भाव लखायौ ॥

सभी से विचारविमर्श करके एक मत होकर राजा हरिदास सेना लेकर धावा करने गए जहाँ रावत थे वहाँ तक राजा हरिदास जा पहुँचा । दोनों दलों ने युद्ध छेड़ दिया, और उनके सैनिकों के जमघट से तथा हाथी घोड़ों के पैरों द्वारा उड़ाई गई धूल के आकाश में व्याप्त हो जाने से दिन में रात्रि जैसा अंधकार छा गया ।

लरत लरत बीते दिन चार । राजा को दल मर्‍यो अपार ।
जीत्यों अंत राव हरिदास । सब रावत की कींनी नास ॥

लड़ते - लड़ते चार दिन बीत गए तथा राजाराम के बहुत सारे सैनिक मारे गये । अंत में जीत राजा हरिदास की हुई, उन्होंने सभी रावतों का नाश कर दिया ।

इकसत पर अरू कटक अपार । रावत सहंस लाये हैं मार ।
उनहूं ऐसै हाथ लगाये । उततें आगैं जान न पाये ॥

एक तो यह राजा हरिदास सत्य पर चलने वाला था दूसरे उसके पास अपार सेना थी, इसलिए उन्होंने हजारों रावत मार दिये । उन्होंने उन रावतों को ऐसी चोट पहुँचाई कि वे उससे (उस युद्ध क्षेत्र से) आगे नहीं भाग पाये ।

राजा आपुन घाइल भये । लोग कुटंब मिलि घर लै गये ।
सौरावत रानी लै गये । राजाराम प्रान सुख भये ॥

राजा हरिदास स्वयं घायल हो गया, उनके परिवार के लोग मिलकर उन्हें घर ले गये । और जो सौ रावत थे वे रानी को लेकर राजाराम के महल में जाने में सफल हो गए क्योंकि वे बहुत आगे निकल चुके थे । रानी के पहुँचने से राजाराम के प्राणों को शान्ति मिली ।

सनमुख चढ़िकै आयौ राव । रानी घर आनी करि चाव ।
रानी रोवत रैन बिहावै । राजो कौं चुख वुह न लगावै ॥

तब फिर राजाराम उस रानी की अगवानी करने के लिए बड़ी शान से आगे आए और रानी को बड़े चाव व उमंग से अपने रहने के निवास पर ले गये । रानी रातभर रोती रही पर उसने राजा को अपने मुँह नहीं लगाया अर्थात् उसने राजा की ओर स्नेहपूर्वक मुँह उठाकर नहीं देखा ।

राजैं कीनैं जतंन करोर । पै रानी देखत नां वोर ।
यहै कहै जौ बावहि पानि । हौं करिहौं अप जीव की हानि ॥

राजा के करोड़ जतन करने पर भी कामरानी ने उसकी ओर नहीं देखा । कामरानी ने राजा से कहा कि अगर तुमने मेरा हाथ थामने की कोशिाश की तो मैं अपने जीवन का अंत कर दूँगी ।

बुरी करी तैं पकरि मंगाई । मुख बोलौं तौ रांम दुहाई ।
तब राजै मन मांहि रिसाइ । न्यारौ घरू इक दयौ चिंनाइ ॥

तुमने बुरा किया जो मुझे पकड़ कर मंगा लिया, अगर मैं तुमसे बात भी करूँ तो मुझे राम की शपथ है । तब राजा को मन में खिसियाहट हुई, राजा ने रानी के लिए एक नया घर चिनवा दिया ।

येक काठ कौ खंभ बनायौ । तापर वाकौ महल चिनायौ ।
कीनों अधिक उतंग अवास । धरनीं दूरि निकट आकास ॥

राजा ने लकड़ी का खंभा बनवाया, तथा उस खंभे पर रानी के लिए एक नया महल बनवा दिया । राजाराम ने महल को इतना ऊँचा बनवाया था कि वह धरती से दूर तथा आकाश के पास था ।

द्वै चेरी राखी ढिंग राइ । ती जी ये मालिनि जाइ ।
येक मास कौ राजा आवै । फिरि उठिजै जब मुख न लगावै ॥
मानस कौ बस कहा बसाई । पंछी यौ उत उडित न जाइ ॥

राजा ने कामरानी के साथ दो दासियाँ रखीं, तीसरी एक मालिन थी। राजा एक महीने के बाद वहाँ आता था, और जब रानी उसकी तरफ देखती भी नहीं थी तो वह वापिस चला जाता था। वह महल इतना ऊँचा व सुरक्षित था कि वहाँ पक्षी भी उडक़र नहीं पहुँच सकते तो मनुष्य की तो सामर्थ्य ही क्या थी।

॥दोहा १०॥ वा मालनि पै जाई कै, जौ करि हौ पहिचांनि।
फूलन कै संग मधुप है, जाहु तौ पैहो जानि॥

मित्रों ने राजकुमार से कहा कि रानी की तीसरी दासी मालिन के पास जाकर अगर हम जान-पहचान करते हैं तो मालिन तुम्हें उसी भाँति कामरानी के महल पहुँचा देगी जैसे कोई फूल को जाए और भँवरा उसके साथ छिप कर चला जाए। उसी तरह मालिन तुम्हें वहाँ ले जा सकती है।

॥चौपई ६॥ कुंवर पास आये तब मिंत। कह्यौ कुंवर जू करहु न चिंत।
भेद लह्यो अब आंनि मिलावैहि। तौ किंकर रावरे कहावैं॥

तब सभी मित्रों ने राजकुमार के पास आकर कहा कि कुंवर तुम चिंता मत करो, हमने भेद तो प्राप्त कर लिया है कि रानी कहाँ निवास कर रही है। हम आपके यदि सच्चे सेवक हैं तो कामरानी को अवश्य ही ले आएंगे और आपको उससे मिलवा देंगे।

हहा कुँवर तूं डेरै जाहि। हम ढूंढत हैं जाकी चाहि।
कह्यो प्रगट जौ लौं नहीं पाऊं। चित्र द्रसन हूं जीव जिवाऊँ॥

कुँवर! अब तुम डेरे पर जाओ, हम तुम्हारी चाहत की खोज करते हैं। कुँवर ने इस प्रकार अभिव्यक्ति की कि जब तक मैं उस कामरानी को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक मैं उसकी मूर्त्ति में व्याप्त चित्र के दर्शन के सहारे से अपना जीवन व्यतीत करता रहूँगा।

गयौ मालन की ढिगु काछी। दई दिसाल अमोलक आछी।
प्रथम कही आपुनी जात। वाकैं घर उतरयौ करि घात॥

राजकुमार के चारों मित्रों में जो काछी (माली) था वह मालिन के पास गया तथा उसने मालिन को एक दुशाला उपहार में दिया। काछि ने सबसे पहले मालिन को अपनी जात बताई तथा उसके घर में घात लगाकर घुस गया।

निस बासुर दंमका ही देत। लागी करन मालनी हेत।
पूत कहै बहु भाषै माता। जोर मिलाई भली विधाता॥

रात - दिन वह मालिन को पैसे देता था। अब मालिन भी उससे प्रेम करने लगी। मालिन उसे पुत्र कहती थी

और वह उसे माता । विधाता ने यह अच्छी जोड़ी मिलाई ।

मालन सदा हार लै जाइ। पैं काछी कछु नांहि लखाइ ।
येक द्यौस करि कै मनुहार। गूंथ दये माली नैं हार ॥

मालिन रानी के लिए हमेशा फूलों का हार ले जाती थी पर काछी को कुछ नहीं दिखाती थी । एक दिन बड़े मन से काछी ने रानी के लिए फूलों का हार गूंथ दिया ।

गूंथे अैसे नीकी भांति। पुनि देखै उपजै मन सांति ।
अैसी बिधि के हार रचाये। फूलन ही के भंवर बनाये ॥

काछी ने इतनी अच्छी तरह हार को गूंथा था कि बार-बार उस हार को देखने से मन को शांति मिलती थी। उसने ऐसी विधि से हार बनाया कि उसमें फूलों के ही भँवरे बन गये ।

मालन लेइ गई चित चाइ। रानी देखि रही भरमाइ ।
डरति हाथ नहीं लावै तीय। जिन मधुकर काटै डरू जीय ॥

मालिन मन में प्रसन्न होकर हार ले गई । उस हार को देखकर कामरानी भ्रमित हो गई । भँवरे के द्वारा काटे जाने के डर से उस रानी ने हार को हाथ नहीं लगाया ।

मालिन हंसी तबहिं तीय जान्यो। यहु बनाव फूलन कौ बान्यौ ।
पूछी बात सौह दै रानी। जिन गूंथयौ सौ कौन बिनांनी ॥

मालिन के हँसने पर ही रानी यह जान पाई कि ये भँवर फूलों की ही रचना हैं । तब रानी ने मालिन को सौगन्ध देकर पूछा कि यह हार किसने बनाया है ।

मालिन कह्यौ पाहुनौं आहि । अमित अर........... चाहि ।
बहुत मया लिहि भी रानी केतक भु। नित्र कही सब बात.........॥

मालिन ने कहा कि जिसने यह हार बनाया है, वह मेरा अतिथि है, उसमें अमित गुण हैं । उसने बड़ी इच्छापूर्वक फूलों का यह हार बनाकर दिया है । इसके अतिरिक्त और भी बहुत प्रकार से मालिन ने बाते गढ़गढ़ कर कहीं । उसके पश्चात् राजकुँवर के चारों मित्र मालिन के पास पहुँचे और उन्होंने कहा कि तुम राजकुमार के विषय में कामरानी से सारी बातें प्रगट कर दो ।

जो रानी को लेहै नाव। मारै........ राजा वाही ठांव ।
दमका बहुत दये मिलि यार। तबहिं मालिनी उपज्यो प्यार ।।

मालिन ने कहा कि अपने मुख से ऐसी बात बिना रानी को विश्वास में लिये कहना ठीक नहीं है, यदि राजा राम से रानी ने मेरा (मालिन) नाम ले लिया तो राजा तत्काल उसी स्थान पर मुझे मार डालेगा । सभी मित्रों ने मिलकर मालिन को बहुत पैसे दिये तब जाकर मालिन को उन पर प्यार आया ।

यहै कह्यौ हौं तुममें भई। हम तुम बीच दयौ है दई ।
जों बाकी कछु मनसा पाऊं। तबहिं कुंवर की बात चलाऊं।।

फिर मालिन ने कहा कि मैं तुम्हारे कार्य के लिए समर्पित हो गई हूँ, और हमारे तुम्हारे बीच विधाता ने प्रगाढ़ सम्बन्ध उत्पन्न कर दिया है । यदि अवसर आने पर उस कामरानी की कुछ भी अनुकूल इक्षा पाऊँगी तो उसी समय मैं राजकुँवर के प्रणय निवेदन की बात चलाऊँगी ।

मालनि इन सौं बात बनाइ। बैठी है अपने घर आइ ।
बढ़ई आयौ मालनि पास। विद्या अपनी करी प्रकास ।।

इस प्रकार मालिन ने उन पाँचो मित्रों को अनुकूल बातों से सांत्वना देकर प्रसन्न कर दिया, और अपने घर आकर बैठ गई । मालिन के पास बढ़ई आया, उसने अपनी बढ़ईगिरी के कौशल के विषय में बहुत सी बातें प्रकाशित कीं ।

करी काठ की मूरत अैसी। पाहन की देखी है जैसी ।
मूरत एक कुँवर की कीती। अैन नैन बैसी गढि लीनीं ।।

उसने जिस प्रकार की सुन्दर मूर्त्ति कामरानी की उस मंदिर में बनी हुई थी, उसी प्रकार की अनुकृति स्वरूप लकड़ी की मूर्त्ति बना दी । उसने एक अलग लकड़ी से कुँवर की आकृति की मूर्त्ति बनाई । उसका आकार प्रकार लम्बाई, चौड़ाई, नेत्र व मुख आदि के अंग व उपांगो का स्वरूप सब कुछ राजकुँवर के सदृश था । वह मूर्त्ति कामरानी की मूर्त्ति के ही समकक्ष थी ।

पटरी पर कीने जुग साथ। कुँवर खरौ पैं जोरैं हाथ ।
मूरति जुगल करी अभिराम। तापर लिखे दुहुन के नाम ।।

बढ़ई ने इन दोनों मूर्त्तियों को एक पटरी पर खड़ी हुई मूर्त्तियों के रूप में जड़ दिया । मूर्त्ति में राजकुँवर को हाथ जोड़े हुए निर्मित किया गया था । दोनों की मूर्त्तियाँ बहुत सुन्दर बनाई गई थी और उन पर राजकुँवर व कामरानी के नाम पृथक् - पृथक् लिखे हुए थे ।

उत दुराई मालन लै गई । रानी देखत बौरी भई ।
मालिनि कौं दी संपति विधाता । तबहिं कही मालन सब बाता ॥

इन दोनों मूर्त्तियों को किसी प्रकार छिपा कर मालिन कामरानी के पास लेकर पहुँची । रानी मूर्त्तियों को देखकर विवेकहीन अर्थात् मुग्ध हो गई । विधाता ने अपने प्रसाद की ऐसी सम्पदा मालिन पर दया करके दी कि मालिन रानी से पूर्ण कुशलतापूर्वक बातचीत करने में सफल हो गई, और मनोरथ को सिद्ध कर सकी ।

कुँवर पीति रानी मैं आई । तिन रानी पल मैं बौराई ।
यहै पैमु कौ आहि सुभाई । द्वैतन तें येक्वै ह्वै जाइ ॥

बढ़ई और मालिन के इस प्रकार के प्रयासों से रानी के हृदय में कुँवर के प्रति प्रेम का भाव जागृत हो सका । रानी की अद्वैत की अवस्था है जो एक समात्म भाव की अवस्था है जिसमें समान प्रेमभाव प्रधान है और अपने तन की सुध-बुध लुप्त हो गई है । इसमें जाति,लिंग, वय, रंग-रूप सब कुछ विलुप्त होकर एक निराकार प्रेम के प्रति समर्पण परक आनन्दातिरेक की अनुभूति प्रधान है, और सगुण की परिणिति निर्गुण में हो रही है ।

रानी परी मालनीं पाइ । प्रगट येक वर देहिं दिखाइ ।
मालिन कह्यौ कहति हौं जाइ । जो कछु होत उत्तर पाइ ॥

रानी ने मालिन के पैर पकड़कर इस प्रकार प्रार्थना करी कि कुँवर को एक बार मुझे प्रत्यक्ष रूप में दिखा देने की कृपा कीजिए । मालिन ने कहा कि मैं कुँवर के पास जाती हूँ और इस सम्बन्ध में जो कुछ उत्तर होगा, उसे प्राप्त करके मैं आपके पास आ जाऊंगी ।

चली मालिनी ठौरी लाइ । रोवति छाडी तंनंया राइ ।
नेहु लगै कछु रहै न बंक । जैसो राजा वैसो रंक ॥

तत्पश्चात् मालिन ने रानी को प्रणाम कर राजकुमारी को रोते हुए छोड़कर प्रस्थान किया । जब सच्चा प्रेम हो जाता है तब उसमें कोई भी टेढ़ापन हृदय में नहीं रहता है अर्थात् प्रेम राजारंक में फर्क नहीं करता है ।

दौनों रोवै येकैं भांति । येकौ दुःख येक्कै बिधि सांति ॥

और यहाँ पर वो राजकुमार और कामरानी समान रूप से विरह के कारण दुःखित होकर रोते रहते हैं और वियोग के कारण दोनों को समान दुःख है । और इन दोनों की शांति का एक ही उपाय है, वह है - परस्पर मिलन ।

||दोहा ११||

पैमु नग्र कौ जांन कहि, जानहु यहै सुभाव ।
जो बिछुरै सो रंक है, मिंत लहै सो राव ॥

जान कवि कहते हैं कि प्रेम नगर के नागरिकों का यह स्वभाव अनुभव में सत्य सिद्ध हुआ है कि यदि वियोग होता है तो वियोगी अवस्था में प्रेमी रंक हो जाते हैं और मीत यानि प्रियजन मिल जाते हैं तो वह राजा के समान सर्वसम्पदा युक्त हो जाते हैं ।

||चौपई ७||

मालन आइ बात सब कंही । भई कुँवर छतियां डहडही ।
मतौ करन लागे मिलि यार । किंह उपाव मिलवै करतार ॥

मालिन कुँवर के पास आई और राजकुमारी के प्रेम की वियोग पीड़ा और कुँवर को देखने के प्रणय निवेदन के विषय में संदेश दिया । इससे कुँवर की छाती में स्फुरण उत्पन्न हो गया । तब राजकुँवर और शेष चारों मित्र इस संबध में कोई उपाय करने के लिए विचार करने लगे कि विधाता कृपा करके किस विधि से राजकुँवर को कामरानी तक पहुँचा सकेंगे ।

पर्थम काछी बात सुनाई । मोते होत सु करि दिखरांई ।
और बात जो मोते होइ । पुनि करिकैं .... दिखराऊ सोइ ॥

सर्वप्रथम उपाय बताते हुए काछी (माली ने) यह बात बताई कि मैंने अपने कौशल के प्रयोग से सुन्दर हार बनाएं जिससे कामरानी के हृदय में प्रेम को उत्पन्न कर दिया । और अब आगे किसी दूसरे अवसर पर यदि मेरे लायक कोई अवसर होगा तो अपने कौशल से सहायता कर दूँगा ।

कह्यौ सुरंगिया अग्या पैहों । धरहीं धरवां घर लै जैहों ।
बढई कह्यो काठ कैं खंभ । हौं करि रंध्र निकारौ रंभ ॥

सुरंग खोदने में कुशल दूसरे मित्र ने ऐसा निवेदन किया कि यदि आप की आज्ञा प्राप्त करूँ तो मैं एक उपाय करना चाहता हूँ कि रानी जिस खंभे के ऊपर बने हुए महल में रहती है, उस महल वाले खंभे के तल में कहीं दूर से पृथ्वी के अन्दर ले जाकर महल में अन्दर प्रवेश तक सुरंग बना दूँगा जिससे कि उसमें होकर राजकुँवर कामरानी तक पहुँच सकेगा । अब तीसरे मित्र बढ़ई ने यह कहा कि मैं काठ का बड़े रंध्रयुक्त एक केले का पेड़ बना दूँगा और उसको सुरंग से जोड़ कर गुप्त रूप से महल तक पहुँचने में सहायता का उपाय कर दूंगा ।

सौदागर बोल्यो अभिराम । तुमतें काम हमारे दांम ।
जो बलि दीजै जा कै नाम । तातें कोऊ राखत दाम ॥

चौथे मित्र ने बहुत सुन्दर वाणी में यह कहा कि तुम्हारे समस्त कार्यों को पूरा करने के लिए हमारे दाम (धन) प्रयोजन सिद्ध करने हेतु पर्याप्त हैं । जिससे जो कोई काम लेना हो उसको मुझसे दाम दिलवाकर अनुकूल बना लें ।

पाँचौ मिले राइ कौं जाइ। भैंदु दइ बहु लागै पाइ ।
यहै कह्यो सौदागर आहि। इत रहिबे की है जिय चाहि ॥

अब पाँचों मित्र उस नगर के राजा रानी के पास पहुँचे और वहाँ उनको भेंट में अपार रूपये आदि दिये और उनके पैर छुये । इसके पश्चात् प्रार्थनापूर्वक निवेदन किया है कि हम सब लोग सौदागर हैं और हमारे यहाँ रहने की मन में इच्छा है ।

राजा नेरैं ठौर बतावहि। तौ हंम उतहि धाम सौरांवहि ।
सुनत बात राजा कौ भाई। अपनै नैरै ठौर बताइ ॥

यदि राजा साहब अपने समीप में रहने के लिए स्थान स्वीकृत कर दें तो हम उसी स्थान पर अपने निवास का भवन बना लें । राजा को उनकी कही हुई बात अच्छी लगी और राजा ने उन्हें अपने समीप में ही भवन बनाने का स्थान निर्देशित कर दिया ।

नीके नीके कीने धाम। जितहि महल हौ रानी कांम ।
भलै सुरंगिया सुरंग चलाई। काठ खंभ कै नीचै आई ॥

जिस जगह कामरानी का महल था उधर ही, उसी के पास इन पाँचों सौदागरों के वेशधारी मित्रों ने अपने सुन्दर-सुन्दर निवास बना लिये । उसके बाद सुरंग खोदने वाले मित्र ने जमीन में होकर एक सुरंग खंभे पर स्थित रानी के महल तक बना दी । उस सुरंग का मुख, सौदागरों के निवास भवन में बढ़ई द्वारा बनाये गये खोखले खंभ जिसका कि स्वरूप केले के पेड़ के समान था उसके नीचे निर्मित था ।

बढई चल्यो कोरतौ खंभ। पहुंच्यौ जाइ रहत जित रंभ ।
सीहरी काठ खंभ मै लाई। तबहि बात रानी प्रगटाई ॥

बढ़ई ने कुराई का काम करके लकड़ी के खंभ को ऐसा खोखला बनाया कि उससे सुन्दरी के भवन तक पहुँचा जा सकता था और एक सीढ़ी काठ के खंभे में उस चिने हुए महल के खंभे के अन्दर-अन्दर बना दी गई ।

मालिन कह्यो दूरि कर चेरी । रानी.......................................।
दाम लै सुरंग प्रजंक बिछायौ। बहुत जतन सौ गई ।
रैन भये तीय आप बनायौ। पंथ सुरंग कुँव्वर तब आयौ ॥

और तब मालिन ने उसके साथ रहने वाली दोनों दासियों को वहाँ से दूर हटाकर कामरानी को यह बात बता दी कि अब राजकँवर सुरंग के माध्यम से आपके पास रात्रि को महल में आयेगा । उस मालिन ने अच्छा धन वसूल करके राजकुँवर और कामरानी के मिलने के लिए अच्छा साधन बनाया । सुन्दर ढ़ंग का पलंग बिछाया और फिर वह मालिन राजकुँवर को रानी का आमंत्रण देने गई । रात्रि होने पर कामरानी ने कुँवर की सेवा सत्कार के लिए स्वयं ने सब

साधन जुटाये । सुरंग का उत्तम पंथ ग्रहण करके वह राजकुँवर तब रानी के पास महल में आया ।

॥दोहा १२॥ रानी देखत ही कुँवर, पर्‍यो भौम मुरछाइ ।
रानी पुनि देखत परी, चेरन लइ उँचाइ ॥

रानी को देखते ही कुँवर मूर्च्छित हो गया और पृथ्वी पर गिर गया । पुन: रानी (काम) भी उस राजकुँवर को देखकर प्रेम-प्रभाव से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, तभी बंदियों ने उसे ऊपर उठा लिया ।

॥चौपाई ८॥ जुगल चेत बैठे परजंक । हंसि हंसि भरि है अंक निसंक ।
और करें सबहीं रसु कंवर । कली न पैठ न पावै भंवर ॥

राजकुँवर व कामरानी दोनों को फिर चेतना प्राप्त हो गई, तब वे दोनों ही पलंग पर एक साथ बैठ गये और प्रसन्नतापूर्वक हँस-हँस कर नि:शंक भाव से परस्पर एक-दूसरे को अपने अंक (आलिंगन) में बाँधने लगे । राजकुँवर ने सभी प्रकार से प्रेम क्रीडा प्रिय मिलन पर कीं, बस एक रति क्रीड़ा ही नहीं की अर्थात् भवँरा कली पर नहीं बैठा - उस कामरानी का कौमार्य - रस नहीं लूटा था ।

याही विधि नित निस कौं आवैं । सब रस ह्वै पै रति न मनावै ।
यहै कहै मों घर लै जाहि । पिता मोहि दै, तोहिं बिवाहि ॥

इसी प्रकार सुरंग के माध्यम से नित्य रात्रि के समय राजकुँवर वहाँ कामरानी के पास आया करता था और समस्त प्रकार की प्रेमपूर्ण क्रीड़ायें करता था, परन्तु बस एक रति - क्रीड़ा उत्सव नहीं मनाता था । कामरानी ने बस बारम्बार यही निवेदन राजकुँवर से किया कि मुझको मेरे पिता के पास मेरे घर ले चलिये । वहाँ मेरे पिता जब विधिवत् रीति से मेरा विवाह कर दें तब ही जो तुम रतिक्रीड़ा करने की बात कहोगे वह सब प्रेम की बातें मैं तुम्हारे साथ पूर्णत: आचरित करूँगी ।

तब पाछैं जो कहै सु करिहौं, अब हौं नहीं पाप मैं परिहौं ।
कुंवर कहैं मिंतन सौं जाइ, अबहि रहें इतनां बनं आइ ॥

पिता द्वारा विवाह जब तक नहीं हो उससे पूर्व ऐसा करके में पाप के मार्ग पर नहीं चलूँगी । कुँवर प्रतिदिन कामरानी से मिलकर जब अपने मित्रों के पास पहुँचता था, तब वह कहा करता था कि अभी तक मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ है ।

देख देख प्यारी लालिचाऊं । सो कछु करहु जु हौं सुख पाऊं ।
मींतनिं कह्यो चलहु लै धांवहिं । रांनीं वाके पिता मिलावहि ॥

मैं अपनी प्रियतमा से पूर्ण संयोग के सुख को पाने के लिए लालायित हूँ । इस संबंध में कोई उपाय आप

बताएँ जिससे मेरा मनोरथ पूर्ण हों और मैं सुखी रह सकूँ । मित्रों ने कहा कि रानी को महल से निकालकर ले चलो और हम सब उसे ले जाकर उसके पिता से मिलवा दें ।

जौ वहु तुंमकौ देइ बिवाहि । तौ सब पूजै मन की चाहि ।
घोरे अस्ट लये ऐराकी । चपलाई कहि सकूं न ताकी ॥

यदि कामरानी के पिता उसका विवाह आपसे कर दें तो आपके मन की सम्पूर्ण चाहना पूरी हो जायेगी । तब सभी ने आठ घोड़े उलम ईराकी जाति के ले लिये जो कि अत्यन्त वेगशाली थे ।

सुरंग पंथ रानी द्वै चेरी । आई है प्रीतम कैं नेरी ।
अर्ध निसा ये चारों निकसे । इंदीबर जे रहे .... कर निकसे ॥

इसके बाद रानी दो चेरियों के साथ में महल की सुरंग के पंथ से निकलकर प्रीतम राजकुँवर के डेरे में आ गई है । अर्द्ध निशा के समय राजकुँवर, कामरानी और दो चेरियाँ जो इन्दीवर के समान खिले हुए मुख वाली लग रही थी, चल पड़े । और चारों मित्र भी राजकुँवर के पीछे चले ।

दस दिन बीतें खुले अकास । तब आये नगरी कै पास ।
अबहिं सुनहुं राजा की बात । रानी के आयौ इक रात ॥

दस दिन खुले आकाश में निरन्तर मार्ग में चलते रहने के बाद कामरानी के पिता की नगरी के पास पहुँच गये । अब उस राजाराम की बात सुनिये - वह एक रात्रि को रानी के महल में आया ।

आगै रानी पाई नाहि । चेरियो नाहीं घर मांहिं ।
बोरौ भयौ निहारत धांम । परी सुरंग डिस्ट तब राम ॥

उसने रानी को अपने कक्ष में नहीं पाया और घर में दोनों चेरियों को भी नहीं देखा । तब वह हतुबुद्धि होकर उस भवन को निहारने लगा, उस समय राजा राम की दृष्टि उस सुरंग पर पड़ी ।

उतरि सुरंग तरै बहु आयौ । रानी कौ सहनान न पायौ ।
राजै कौ चिंता भई भारी । मुवो पेट में मारी कटारी ॥

इसके बाद वह महल से सुरंग में उतरकर उसके तले में पहुँचा, खोजने पर भी उसने रानी को वहाँ नहीं पाया । राजा को भारी चिंता हो गई । वह अपने पेट में कटारी मार कर मर गया ।

जैसो करै सु पावै तैसौ । करि यहु बुरौ देखि को ऐसौ ।
कोऊ कूप काहू कौ करै । वहै अंत कूवां मैं परै ॥

जो व्यक्ति जैसा करता है बदले में उसका वैसा परिणाम भी प्राप्त करता है । यदि बुरा करोगे तो उसी परिणाम में बुरा फल प्राप्त हुआ देखोगे । यदि कोई किसी दूसरे के लिए बुरे आशय से कुँआ खोदता है, तो परिणामस्वरूप दुराशय वाला व्यक्ति उस कुँआ रूपी बुरे कार्य के कुँए में (अंत रूपी) गिर पड़ता है ।

॥दोहा १३॥ बुरौ न कीजै जांन कहि, भलो करहु सब कोइ ।
जैसो बईये बीज जगु , तैसौ ही फलु होइ ॥

जान कवि उपदेश देते हैं कि संसार में आकर सब लोगों को भला करना चाहिए । किसी का बुरा नहीं करना चाहिए । इस जगत् में जैसा बीज आप बोयेंगे तो उसका उसी प्रकार का फल प्राप्त होगा ।

॥चौपई ९॥ चोर लेइ चोरी कौ घोरा । बैंचन गानैं खांस मैं भोरा ।
छीनि लयौ काहूं पहिचांन । चोर गयौ घर लये पिसान ॥

जान कवि एक उदाहरण के साथ में उपदेश करते हैं कि कोई चोर चोरी करके कोई घोड़ा ले आया और फिर अविवेकपूर्वक खास शहर में अच्छी कीमत के लालच में उस घोड़े का विक्रय करने के लिए पहुँच गया । किसी ऐसे व्यक्ति ने जिसने घोड़े के विषय में जान लिया कि यह तो उस दूसरे किसी व्यक्ति का घोड़ा है । वह व्यक्ति उस चोर से डरा धमका कर घोड़े को छीन ले गया, तब उस स्थिति में चोर अपने घर जाकर बैठा ।

तीय पूछै असु बैंच्यो केते । चोर कहै लीनौ हौ जेतें ।
यहै रीति राजा की भई । ज्यों आनी ही त्यों हीं गई ॥

वहाँ उस चोर की स्त्री ने आकर पूछा कि आप अपने घोड़े को कितने में बेच कर आये है, तब चोर के मुख से यही निकला कि जितने में घोड़ा खरीदा था या लिया था उतने में ही दूसरे ने मुझसे वह घोड़ा ले लिया । और यही बात राजा पर घटित हुई । जिस प्रकार उसने वास्तविक नीति - रीति की पात्रता के उपाय द्वारा तो रानी कामरानी को प्राप्त नहीं किया था, अपितु उसको (रानी को) बलपूर्वक दुराशय से अपहरण करके ले आया था । उसका परिणाम यही हुआ कि वह रानी हाथ से गई और परिणाम में आत्मघात मिला ।

अबहि सुनहुं मिंतन की बात । सबै बंनांई करता घात ।
बाग माहिं ये बैठे जाइ । रानी घर में दई पठाइ ॥

जान कवि कहते है कि अब राजकुँवर कामरानी और मित्रों का आगे का हाल वर्णित है - ये सभी मित्रगण उस राजा के नगर के बाहर बाग में जाकर बैठ गये और रानी को राजा के भवन में भेज दिया ।

दुहत पिता कै पाइन परी। रोइ दहुंनि लै आकौ भरी ।
कह्यौ धाम क्यों आवन पाई। अैसो को जिन लाई छिडाई ।।

घर पहुँचकर दुहिता अपने पिता के पैरों में जाकर गिर पड़ी और रोई । तब माता और पिता ने उस पुत्री को प्यार से अपने अंक में भर लिया । राजा और रानी ने कहा कि हे बेटी ! तू किस उपाय से या किसकी कृपा से वापिस घर में आने में सफल हुई है । ऐसा कौन समर्थ व्यक्ति है जिसने ऐसे सुरक्षित स्थान पर जाकर तुझे छुड़ा लिया है ।

सुता कह्यो इक राजकुँवार। ले आयौ मोंकू जुझार ।
जिन हौं तुमकौं दई मिलाई। बैठ्यो भवन लावहु जाइ ।।

पुत्री कामरानी ने कहा कि युद्ध में प्रवीण एक राजकुँवर है, वही मुझको यहाँ लेकर आने में सफल हुआ है। उसीने मुझको यहाँ लाकर आपसे मिलवा दिया है, वह नगर के बाहर बाग में बैठा है । कृपया आप वहाँ से उस राजकुँवर को अपने इस भवन में बुलाकर ले आईए ।

राजा चढयौ कुंवर पैं आयौ । बहुत प्यार से गरे लगायौ ।
यहै कह्यो तुम मेरे स्वाम। जिनहु मिलाई रानी काम ।।

राजा घोड़े पर सवार होकर राजकुँवर के पास गया तथा बड़े प्रेम से उसने राजकुँवर को गले से लगा लिया। राजा ने यही कहा कि तुम मेरे अपने हो जिसने मेरी पुत्री कामरानी को मुझसे मिलवा दिया है ।

लै अपने घर राजा आये। सिंहासन पर कुँवर बिठायौ ।
बहुत बधाई भई नगर मैं। मंगल गावत है घरि घरि मैं ।।

राजा राजाकुँवर को लेकर अपने घर आये तथा उन्होंने आदरपूर्वक राजकुँवर को सिंहासन पर बैठा दिया। राजा के आदेश से मंगल कार्य उत्सव मनाए गए, नगर में बंधाइयाँ दी गई । घर-घर में मंगलगान होने लगे ।

राजा करत कुँवर सौं प्यार। निसवासुर विधि विधि ज्योनार ।
राजा रानी बाढी चाहि। कुंवरहिं तनया देहु बिवाहि ।।

राजा ने राजाकुँवर को बहुत प्रेम से रखा । कुँवर के सत्कार करने के लिए रात - दिन अनेक प्रकार के भोजन आदि के आयोजन राजमहल में किए गए । राजा और रानी के मन में उत्त्कट अभिलाषा उत्नन्न हुई कि अपनी पुत्री का विवाह इस राजकुमार के साथ कर दें ।

याते भलौ और को नाहिं । जात रूप रज सब या मांहिं ।
कह्यो कुंवर सौं यहु जीय चाहि। ले जाओ तुम तनया ब्याहि ॥

उनके मन में यह स्पष्टत: यह बात घर कर गई कि इस राजकुँवर से योग्य वर और कोई नहीं हो सकता । इस राजकुँवर के जाति, रूप, संस्कार और तन आदि सब कुछ अच्छे हैं । तब उन्होंने अपने हृदय की बात कुँवर से प्रकट की और यह निवेदन किया कि तुम मेरी पुत्री को ब्याह कर अपने साथ ले जाओं ।

मानहु .... नीर तरीर । राजा नाम कै रीति जु व्याहत ।
करि रानी दई बिवाहि ....॥

राजाओं के लिए जो ब्याह की रीति है, उसी रीति से कामरानी का विवाह कर दिया गया ।

॥दोहा१४॥ जो चाहत है सो भयौ, हर्षवंत रती मैन ।
कीला केल कलोल मैं, बीत गई सब रैंन ॥

राजकुँवर और कामरानी जो चाहते थे कि विवाह हो, वैसा ही हुआ । तब वे हर्ष से युक्त होकर कामदेव ओर रति के समान आपस में मिले और उनके द्वारा कामक्रीड़ा के कल्लोल में संपूर्ण रात्रि व्यतीत की गई ।

॥चौपई १०॥ रानी कुंवर अैन रति मैंन । निस बासुर बीतत मन चैन ।
येक द्योस उठि प्रीतमदास। गयौ मिंत लै राजा पास ॥

रानी और राजकुँवर रात्रि और दिन कामदेव और रति के समान संयोग व्यवहार करते हुए मन में महा चैन प्राप्त करते हुए समय व्यतीत करने लगे । एक दिन राजकुँवर प्रीतमदास प्रात:काल उठ कर अपने चारों मित्रों को लेकर कामरानी के पिता राजा के पास पहुँचा ।

मेरे भइया हैं ये चार। और जीव ते प्यारे प्यार ।
इनहूं कौ तुम करहु विवाहि। यहु मैरे ज्यो मै है चाहि ॥

उसने आदरपूर्वक यह निवेदन किया कि ये जो मेरे साथ चार मित्र हैं, ये मेरे भ्रातृवत् हैं। मेरे मन में यह अभिलाषा है कि आप इन चारों मित्रों का विवाह भी यहाँ करवा दें ।

राजै नाहिं करी मुख नांहिं। ले ब्याहे आपनै कुल माहिं ।
बनी कुँवर की उन तें बात। तौ वै कीने कुँवर, सुजात ॥

राजकुँवर की बात को सुनकर राजा ने अपने मुख से मना नहीं किया, अपितु उन चारों मित्रों का विवाह अपने कुल की सुन्दर कन्याओं से करा दिया । अब इन चारों मित्रों की इनके उत्तम गुण कार्य में सहायता, विश्वसनीयता के

कारण जो कुँवर से आत्मिक प्रगाढ़ता उत्पन्न हो गई थी, उसी कारण से राजकुँवर ने उत्तम कुल की कन्याओं से उन चारों मित्रों का विवाह करवाकर उन्हें श्रेष्ठ जाति के समाज में सम्मिलित कर लिया।

या राजा कै हुतौ न पूत। दीनी कुंवरहि सकल विभूत ।
राजपाट सब कुँवरहि दीनौं। आप जोग कौ मारिग लीनौ ॥

इस राजा के चूँकि कामरानी पुत्री तो थी, किन्तु कोई अंगज (तनय) नहीं था । अत: उसने अपनी राजलक्ष्मी आदि सम्पदा राजकुँवर प्रीतमदास को दे दी । राजा ने राजपाट भी कुँवर को ग्रहण करवा दिया और स्वयं वानप्रस्थी होकर लोक साधना हेतु पंथ ग्रहण करके राज त्याग कर चला गया ।

प्रीतमदास भयौ उतराइ। निस बासुर आनंद मै जाइ ।
चारौ मिंत करे परधान। दीनौ है करता सुख आन ॥

अब वहाँ प्रीतमदास राजा हो गया । उसके रात और दिन का समय अब आनन्द में व्यतीत होने लगा । राजकुँवर प्रीतमदास ने राजा बनने पर चारों विश्वस्त मित्रों को विभिन्न विभागों का प्रधान अधिकारी बना लिया । जगत् निर्माण कर्त्ता ने उनके प्राणों को सुख प्रदान किया ।

॥दोहा १५॥ सेवा करि है स्वाम की, ज्यो कोउ हित चितलाइ ।
ताकौ निहचै जानियौ, ह्वै करतार सहाई ॥

इसी प्रकार जो कोई भी व्यक्ति अपने श्रेष्ठ नायक की सहज निर्मल भाव से सेवा करता है, उसके विषय में यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि निश्चल सेवाभावी की ईश्वर सहायता करता है ।

॥दोहा १६॥ इक राजा कवि जान कहि, और चार परधान ।
ना बिछुरै आनंद कीये, जो लौं जीये जहांन ॥

इस कथा का उपसंहार करते हुए कवि उपदेशक श्री न्यामत खां चौहान उपनाम जानकवि कहते हैं कि एक तो वह राजा प्रीतमदास और उनके सच्चे सहायक चारों प्रधान इस संसार में जब तक जीवित रहे तब तक उन्होंने आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत किया ।

॥दोहा १७॥ सोहर सै इक्यानुवै, कथा करी यहु जान ।
पूरन दसै बदि हींतबहि, बार बुधि पहिचान ॥

जान कवि ने यह कथा बुधवार के दिन (कृष्ण) वदी दशमी, सम्वत् १६९१ में पूर्णत: रची है ।

||दोहा १८||　　कहत जान याकौ करत, ढील लगी कछु नाही ।
संपूरन नीकै भई, पहर सवा द्वै माहि ।।

जान कवि कहते हैं कि यह कथा सवा दो प्रहर में भली प्रकार से पूरी रची गई है । इस कथा की रचना में कोई विश्राम आदि ढील की आवश्यकता नहीं हुई है । यह निरंतर एक ही अवधि में पूर्ण हो गई ।

पुष्पिका -:　　इति कथा प्रीतमदास कामरानी की संपूरन भई ।
संवत सतरह सै १७२४ मीती चैत वदी १०
दसतषत फतेहचंद ताराचंद का डीडवानीया ।। श्री श्री श्री

पुष्पिका -:　　इस प्रकार यह कथा प्रीतमदास कामरानी की सम्पूर्ण रूप से लिखी गई संवत् सत्तरह सै 1784 मिती चैत्र बदी, 10 दस्तखत फतेहचन्द ताराचन्द का डीडवानीयां । श्रीश्रीश्री ।

जानकृत कथा
तमीम अनसारी

तमीम अनसारी की कथा

||प्रारम्भ||

चौपई

सुमिरन आदि करौं करतार। इछ्छ्या सकल पुजावनहार ।
दूजै नबी जपूं कहि जान। ऐसौ मुक्तउ पावन आन ||१||

सर्वप्रथम मैं लोक-कल्याण की सम्पूर्ण इच्छा को पूर्ण करने वाले, जगत् निर्माता ईश्वर का स्मरण करता हूँ। वे इस काव्य - कथा रूपक को पूर्णता प्रदान करेंगे । जान कवि कहते हैं कि अब द्वितीय प्रेरणास्पद पूज्य नबी अबू वक्र से प्रार्थना करता हूँ जो कि ईश्वर के अतिरिक्त, पृथ्वी पर दूसरी पवित्र मुक्त-शक्ति वाले हुए हैं ।

हितौ तमीम येक अनसारी। ताकी बिपति कथा उचारी ।
प्रेत उड़ाइ गयौ लै तहां। बाकी ठौर रहन की जहां ||२||

तमीम अनसारी नामक एक व्यक्ति था । उसकी विपत्तियों से भरी कथा, मैं कह रहा हूँ । तमीम अनसारी को प्रेत अपने रहने के स्थान पर अपने साथ उड़ा कर ले गया था ।

तिह धन पूछे बहुत सयाने। सबै जान इहिं बात अयाने ।
पूछत बैठि रही थकि नारी। कहूं कह्यौ न उति अनसारी ||३||

अपने पति तमीम अनसारी का पता जानने के लिए उसकी पत्नी ने अनेक (धर्म-मार्गों के जानकार) ज्ञानियों से निरन्तर बहुत पूछा । सभी जनें उसके सम्बन्ध में पता - ठिकाना जान सकने में अज्ञानी प्रमाणित हुए । पूछते-पूछते उसकी पत्नी, कहीं भी, किसी से भी पता न चलने पर, निराशा से थक कर बैठ गई ।

चार बरष इहि भाँति बिहाये। तिया सुता सुत भूष सताये ।
उमर खिताब पास तिय आई। अपनी बिथा सकल प्रगटाई ||४||

चार वर्ष उसने किसी प्रकार से व्यतीत किये । उसकी पत्नी, पुत्री और पुत्र ने भूख आदि के कष्ट सहे । तब वह नारी नगर के उमर (खलीफा) पदधारी के समीप गई और उनसे अपनी समस्त व्यथा प्रकट की ।

हौं, पुनि बालक भूख सताये। चारि बरस अति दुखित बिहाये।
अब कछु ऐसौ करहु उपाइ। जातें भूख हमारी जाइ ॥५॥

अनसारी की पत्नी ने उमर अमीर (खलीफा) से प्रार्थना की, कि मुझे तथा मेरे बालकों को खाने-पीने की सुविधा न होने से कष्ट सहना पड़ रहा है। इस कष्ट के साथ चार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अब आप हमारी ऐसी सहायता का उपाय कीजिए जिससे, हमारे लिए - भोजन आदि जीवन-निर्वाह की सुविधा हो जाए।

उमर अमीर दर्ब कछु धायौ। साढ़े तीन बरस लौं खायौ।
निबरि गयौ तब बहुरीं आई। यहु बिनती कीनी गहि पाई॥६॥

उमर अमीर ने उस नारी को कुछ द्रव्य (धन) खर्च चलाने के लिए दिया। उस द्रव्य से अनसारी की पत्नी ने 3½ वर्ष तक अपने घर का खर्च पूरा किया। जब उक्त धन भी समाप्त हो गया तब वह पुन: उमर अमीर के पास पहुँची और पैर पकड़ कर विनम्र प्रार्थना की।

भूखी मरौं अकेली डरौं। अग्या होइ पुरुष कौं धरौं।
उमर अमीर तबहिं यौं कह्यो। धरि कोउ जौ जात न रह्यौ ॥७॥

मैं धन के अभाव में भोजन की आवश्यक सुविधायें नहीं जुटा पाती हूँ और डरती भी रहती हूँ। यदि आप आज्ञा दे दें तो किसी अन्य पुरुष को पति रूप में रख लूँ।" प्रार्थना को स्वीकार करते हुए उमर अमीर (खलीफा) ने आज्ञा दी कि यदि (साढ़े सात वर्ष की अवधि निकल जाने पर भी) धर्म के अनुसार वरण किया गया पूर्व पति उपलब्ध नहीं हो रहा है तो कोई पुरुष तुम पति के रूप में चुन कर रख लो।

इक परदेसी देख्यौ बामा। तिहि लै आई अपने धामा।
बैठे दूर करत हे बात। थोरी ये बीती ही राति ॥८॥

उस स्त्री ने एक परदेशी व्यक्ति खोज लिया और उसे अपना पति बना कर अपने घर ले आई। उक्त पति तथा वह स्त्री, थोड़ी रात्रि व्यतीत होने के समय दूर-दूर बैठे-बैठे आपस में बातचीत कर रहे थे।

ताही में आई इक घटा। बरसत चमकत दामिन घटा।
भई बहुत अंधियारी रैन। सूझत कछु न पसारैं नैन ॥९॥

इस अवधि में एक चमकती बिजली की छटा से पूरित और वर्षा करती हुई बादलों की घटा छा गई। रात्रि बहुत अंधकारपूर्ण हो गई। नैनों को फैला कर यत्न करने पर भी कहीं कुछ दिखाई नहीं देता था।

ताही में आयौ अनसारी। जरे किबार हलाये भारी।
तब धन बोली, कहि, हौ कौन। छुवत किवार मौन ही मौन ॥१०॥

तब ही तमीम अनसारी वहाँ आ गया। उसने मकान में लगे हुए किवाड़ों को वेग से बहुत हिलाया। तब नारी उस अपने पूर्व पति से (बिना पहिचानते हुये) पूछने लगी कि, "तुम कौन हो ? तुम मौन ही मौन किवाड़ों को छू रहे हो।"

उन तिय कौ पहिचान्यौ बोल। कह्यौ पुरुष तुव दै पठ खोलि।
तिय जान्यौ फिरि आयौ प्रेत। दूजैं पुरुष लैनं कैं हेत ॥११॥

तमीम अनसारी ने उस पत्नी का बोल पहचान लिया और उत्तर दिया, "मैं तुम्हारा आदमी हूँ। किवाड़ खोल दे।" उसकी पत्नी ने समझा कि मेरे नये पति को ले जाने के लिए वही प्रेत (फिर से) पुन: आ गया है।

कह्यौ पुरुष मेरो मो पास। तू है प्रेत न करौ विसास।
और पुरुष कौ सुनिकै नाम। तोरि किवार हौं (बस्यौ) घुस्यौ तब धाम ॥१२॥

पत्नी ने तमीम अनसारी से कहा, "मेरा पुरुष मेरे पास विद्यमान है। तू तो प्रेत है। तेरा मैं विश्वास नहीं करती हूँ।" किसी अन्य पुरुष को अपने पास, बताने पर तमीम अनसारी ने घर के किवाड़ों को तोड़ डाला और घर में घुस गया।

कह्यौ नाहिं पहिचानत नारी। हौं तौ हौं तमीम अनसारी।
बेटा बेटी सब पहिचाने। न्यारे न्यारे नांव बखाने ॥१३॥

उसने कहा, "मेरी पत्नी ! तू मुझको भला कैसे नहीं पहचानती है। मैं तो तमीम अनसारी हूँ।" उसने अपने समस्त बेटा-बेटियों पहचान कर उनके नाम भी पृथक् - पृथक् बता दिये।

घर में जहां कछू हौ राख्यौ। सो अनसारी सब ही भाख्यौ।
तोउ तिया नाहिं पतियानी। प्रेत जानि मन में डरपानी ॥१४॥

घर में वस्तुएं आदि जहाँ कहीं भी रखी रहती थीं उक्त सब बातें यथार्थ में अनसारी ने बता दीं। तब भी उसकी स्त्री ने विश्वास नहीं किया कि यह वह पूर्व का उसका पति है। वह उसको प्रेत समझ कर डरी हुई थी।

कह्यो प्रेत तें कछु न दुराइ। जो चाहै सो देई बताइ।
इन सब घर कौ भेद बखान्यौ। वहै प्रेत है निहचैं जान्यौ ॥१५॥

उस स्त्री ने कहा तुझ प्रेत से घर का कोई भी भेद छिपा नहीं रह सकता है। तूं सब कुछ बता सकने की सामर्थ्य रखता है। उसने जब घर का समस्त भेद बता दिया तब स्त्री ने निश्चित रूप में यह समझ लिया कि वह अवश्यमेव प्रेत है।

गुर नख रोम उघारैं आग । लग्यौ प्रेत ही कैसौ सांग ।
तिय डरकैं तब सोर मचायौ । नयौ पुरुष मारन कौं आयौ ॥१६॥

उस पुरुष का ऐसे वातावरण में रूप बड़ा ही भयानक लग रहा था । उसके नाखून बड़े-बड़े थे, रोम उठे हुए थे और बिजली की चमक के साथ आग सी उगलतें दिखाई पड़ रहे थे । इस भयानक रूप में वह प्रेत लग रहा था । इसे देखकर स्त्री ने डर कर शोर मचाया । तब नया पुरुष उस प्रेत को मारने को आया ।

दुहुंवन मांहि परी तब रारि । दयौ पुरानैं नौतन डारि ।
बैठ्यौ उर ऊपर अनसारी । बोलि परौसी लीने नारी ॥१७॥

तमीम अनसारी तथा उस स्त्री द्वारा रख लिये गये परदेशी, नये पति में, तब लड़ाई हुई । पुराने पति तमीम अनसारी ने लड़ाई में नूतन पति को पराजित करके नीचे जमीन पर गिरा लिया । अनसारी उस नूतन पति के सीने पर चढ़ कर बैठ गया । उस स्त्री ने पड़ोस में रहने वाले आदमियों को सहायता के लिए बुला लिया ।

कह्यौ, प्रेत वुह, बहुर्‌यौ आयौ । प्रथम पुरुष जिन हुतौ उड़ायौ ।
अब दूजै कौं लीयें जात । देखहु जौ नाहिंन पतियात ॥१८॥

उस नारी ने पड़ौसियों से कहा कि जिस प्रेत ने मेरा पहले वाला पति उड़ा कर गायब कर दिया था, वही प्रेत पुन: नये पति को उड़ा कर ले जाने के लिए आ गया है । यदि तुम्हें मेरे कथन पर विश्वास नहीं है, तब आप सब स्वयं आकर देख लीजिए ।

पारौसी तब आये धाइ । तरै देखि यौं कह्यौ रिसाइ ।
अरे प्रेत तू याकौं छांडि । कै तोहि मारि डारिहैं गाड़ि ॥१९॥

स्त्री के द्वारा इस प्रकार बुलाये जाने पर, पड़ोस के व्यक्ति दौड़कर वहाँ पहुँच गये । नूतन पति को उस कथित प्रेत के नीचे दबा हुआ देखकर, क्रोधित हुए और इस प्रकार कहने लगे कि, अरे ! प्रेत ! तुम इसके पति को छोड़ दो, अन्यथा हम तुमको मार कर जमीन में गाड़ देंगे ।

अनसारी ये सब पहिचानें । न्यारे - न्यारे नांव बखाने ।
हौं तौ तुम सबही कौं जानत । तुम काहे मुहि ना पहिचानत ॥२०॥

अनसारी ने अपने इन सभी पड़ौसियों को पहचान लिया तथा उन व्यक्तियों के पृथक्-पृथक् नाम बताये। तमीम अनसारी ने उनसे कहा कि, 'मैं तुम सब ही को पहचानता हूँ । तुम सब मुझे क्यों नहीं पहचान पाये हो ?''

मोसौं बुरी करी तुम भारी । दई और कौं मेरी नारी ।
येते पर हौं कीनों पेत । फिरि मोही कौं दुषत देत ॥२१॥

तमीम अनसारी ने कहा कि तुम सब लोगों ने पड़ौसी के रूप में अनुचित व्यवहार अपनाया है । मेरी नारी को अन्य पुरुष को देना स्वीकार कर लिया है । दूसरे पुरूष को पतिरूप में, अपनी पत्नी के पास देखकर मैंने प्रेत-सदृश पाशविक रूप का व्यवहार विवशता में हक की रक्षा के लिए ग्रहण किया है । इस पर भी तुम सब लोग मुझे ही दोषी बता रहे हो ।

ये बोले तू है अनसार । तौऊ याकौं अबहिं निबार ।
हम याकौं यहु तिया न दीनी । उमर अमीर बात यहु कीनी ॥२२॥

समस्त उपस्थित पड़ौसियों ने उसे नेक सलाह बताई कि, तूं यद्यपि, इस नारी का असली पति अनसारी है, किन्तु फिर भी उचित समाधान प्राप्त करके इस समस्या - को सुलझा ले । हमने इस नूतन पुरुष को यह स्त्री नहीं दी है। यह कार्य तो नगर के पदाधिकारी उमर अमीर की विधि - सम्मत आज्ञा के अनुरूप हुआ है ।

जाहि अमीर पास तू भोर । वै काहू पर करहिं न जोर ।
जौ तू सांचे है अनसारी । तोकौं दैहैं तेरी नारी ॥२३॥

पड़ौसीजनों ने तमीम अनसारी को सान्त्वना देते हुए, उससे कहा कि तुम उमर अमीर (खलीफा) के पास, इस समस्या का समाधान करवाने के लिए जाओ । वे न्याय करते हैं । वे पक्षपातपूर्वक किसी का हक नहीं छीनते हैं । वे अपनी शक्ति के बल पर अनुचित कार्य नहीं होने देते हैं । यदि तुम यथार्थ में अनसारी हो, सही पात्रता रखते हो तो श्री खलीफा तुम्हारी नारी तुमको दे देंगे ।

तब वहु छाड़ि दयो अनुसार । भोर भये जै करी पुकार ।
देखि अमीर नाहिं पहिचान्यौ । तू को यहै सबद मुख आन्यौ ॥२४॥

इसके बाद पड़ौसियों ने जो उस अनसारी को घेरे में ले लिया था, अब उसमें पात्रता देखकर उसे मुक्त कर दिया । प्रात:काल होने पर तमीम अनसारी ने उमर खलीफा के पास जाकर प्रार्थना कि । तमीम अनसारी को देख कर खलीफाजी उसे पहिचान नहीं सके। इसलिए उन्होंने यह कहा कि तू कौन है ?

कह्यौ जु हौं तमीम अनसारी । आयौ बिपति काठि कैं भारी ।
सुन्यौ अमीर नांब तब जान्यौ । बचन नबी कौ हिरदै आन्यौ ॥२५॥

उसने उत्तर दिया कि, ''मैं तमीम अनसारी हूँ । मैं संसार में अत्यन्त कष्ट प्राप्त करके साधनापूर्वक यहाँ पहुँच सका हूँ ।'' खलीफाजी ने जब उसका नाम सुना तब उसके संबंध में सब कुछ जान लिया - उन्होंने नबी के द्वारा बताये गए मार्ग - दर्शन को ध्यान में लिया ।

कह्यौ हुतौ तमीम अनसारी । जगु में बिपति काढि है भारी ।
तब वहु अपनै निकटि बिठायौ । अति ही चित कौ हेत जनायौ ॥२६॥

श्री खलीफाजी ने कहा कि तमीम अनसारी का चरित्र मेरे ध्यान में है - उसे (नफ्स के वशीभूत होकर अनुचित - पाप कर्मों के परिणामस्वरूप) जग में अत्यन्त कष्ट मिलेंगे ही।" ऐसा कहने के पश्चात् उसको अपने निकट बुला लिया और अपने चित्त का अत्यंत प्रेम उस पर प्रकट किया।

कह्यौ जु तो पर बिथा बिहांनी। सो मो सौं सब भाष कहांनी।
लग्यौ कहन अनसारी बात। इहि सुनात भई इकि रात ॥२७॥

इस प्रकार कहा कि, 'तेरे ऊपर जो भी व्यथा गुजरी है' - उसके विषय में - उन सभी अनुभूत घटनाओं के विवरण विस्तार से मुझे समझाते हुये सुना दे। तब अनसारी अपनी विगत की कथा बताने लग गया। व्यतीत हुई बातों का कथन करते-करते, एक रात्रि का समय लग गया।

मैं तिय कौं भाष्यौ दै पानी। उन हंसि कैं दी आनाकानी।
मैं रिसाइ कैं ताक्यौ ताल। घर तें निकसि चल्यौ तत्काल ॥२८॥

तमीम अनसारी ने आपबीती कथा जो सुनाई थी वह इस प्रकार है -: एक रात की बात है कि मैंने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि मुझे पानी दे। उसने पानी नहीं दिया। टाल दिया। तब, मैं क्रोध में भरकर, घर से बाहर निकल कर तालाब की ओर जाने वाले मार्ग पर चल दिया।

निकसत प्रेत पर्‌यौ डिठ आइ। मोहि पकरि लै चल्यौ उडाइ।
जात जात अति ऊंचौ गयौ। सूझन लाग्यौ जब दिन भयौं ॥२९॥

घर से निकल कर जैसे ही चला कि तभी एक प्रेत दृष्टिगोचर हुआ। वह मुझे पकड़कर आकाश में बहुत ऊँचा होकर रात भर उड़ता हुआ चला। जब दिन का समय आरम्भ हुआ तब मुझे सब कुछ दिखाई देने लग गया।

सब संसार पर्‌यौ डिठ ऐसौ। ऐकै डेल पर्‌यौ है जैसौ।
कबहूं अंधियारौ लै जाइ। कबहूं उजियारै में आइ ॥३०॥

प्रेत जब मुझे पकड़े हुए आकाश में था और दिन के प्रकाश में ऊपर से जब मैंने पृथ्वी को देखा तब मुझे सम्पूर्ण संसार ऐसा दिखाई दिया मानो वह एक डेल के रूप में (पिण्ड) पड़ा हो। आकाश में वह प्रेत उड़ता-उड़ता कभी मुझे अंधियारे में ले जाता था और कभी उजाले में ले जाता था। आकाश के किसी भाग में अंधेरा और किसी भाग में उजाला था।

कुलजम सागर पैठ्यौ जाइ। उड्यौ नीर में बूड़क खाइ।
उततें बहुरि गयौ आकास। मुहि जीवन की रही न आस ॥३१॥

इसके पश्चात् वह किलकिला नाम वाले समुद्र में प्रवेश कर गया। कभी वह प्रेत जल के ऊपर उड़कर चलता

था कभी मुझे साथ लिए समुद्र के जल में डूबा - डूबा कर चलता था । वहाँ से पुन: वह प्रेत आकाश में जा पहुँचा । उसके साथ आकाश में पहुँचे हुए मुझे अपने जीवन के बचने की आशा नहीं रही ।

हौं उतितें तब दीनौ डारि । पर्‌यौ भौम पर कछु न संभारि ।
चेत्यौ तबहिं अचंभै रह्यौ । मैं आपुन कौं जीवित लह्यौ ।।३२।।

तत्पश्चात् प्रेत ने मुझे आकाश से नीचे गिरा दिया । मैं भूमि पर आकर गिरा । मुझे कुछ भी चेत न रहा । जब मुझमें चेतना का संचार हुआ तब मुझे इस बात का आश्चर्य हुआ कि मैंने अपने को जीवित पाया ।

कहूं चोट हूं लागी नाहिं । कांटौ हू न चुभ्यौ तन माहिं ।
परहु कितैहीं दुख जंजाल । कौन मरै बिनु पुंहचे काल ।।३३।।

मेरे शरीर में कहीं भी चोट नहीं लगी थी । तन में एक कांटा भी नहीं चुभा । आश्चर्यजनक सत्य की अनुभूति मुझे यह हुई कि भले कितने ही दु:खों के जंजाल में मनुष्य पड़ जाये, यदि ईश्वर सहायक हो, और जब तक काल ही न आया हो, तब तक कोई मर नहीं सकता ।

जौ हौं देखौं भलै निहारि । तो उत मानस आहिं अपार ।
येक नमाज करत मैं पायौ । ता ढिंगु जै कै सीस नवायो ।।३४।।

जब मैंने भली-भाँति निरीक्षण करके, वहाँ देखा तब मैंने पाया कि उस स्थान पर अपरिमित संख्या में मनुष्य विद्यमान हैं । एक सज्जन को मैंने वहाँ नमाज अदा करते पाया तब मैंने उनसे सहायता की आशा का विश्वास रखकर, उनके निकट पहुँच कर सम्मान देते हुए सिर झुका कर प्रणाम किया ।

पूछ्यो मोहि मनुष तूं आहि । तौ कहियत आयौ, किंहि चाहि ।
तब इन बात कही समुझाइ । लायौ मोकौं प्रेत उड़ाइ ।।३५।।

मेरी पात्रता देख कर उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या तूं मानव है ? यदि तूं मानव है तो बता कि मुझसे क्या सहायता चाहता है ? उस पूछने वाले श्रेष्ठ नेक नमाजी को, उनके इस प्रकार अच्छी सद्‌भाव की रीति से पूछताछ करते देख, मैंने उन्हें अपनी व्यथा की कहानी समझा कर बताई कि प्रेत मुझे (घर मदीने से) यहाँ पकड़ कर उड़ाता हुआ ले आया था ।

नग्र मदीनै मेरौ धाम । है तमीम अनसारी नाम ।
तब उनि कह्यौ भेदु मैं पायौ । कारौ प्रेत तोहि लै आयौ ।।३६।।

मदीना नगर में मेरा मूल निवास का घर है । मेरा नाम तमीम अनसारी है । तब उन नमाजी सज्जन ने कहा कि मैंने रहस्य को जान लिया है कि तुम्हें कालाप्रेत लेकर आया है

उंहिं पापी की है यहु ठांव। दूरि रह्यौ अति तेरौ गांव ।
मानस जौ इह मारग धायौ। चार संहस बरस में आयौ ॥३७॥

यह स्थान उस पापी का है। तेरा मूल निवास का घर यहाँ से अत्यधिक दूर है। जो मानव इस मार्ग पर पहुँच कर इस स्थान तक आया हो वह चार हजार वर्ष की अवधि में पार करने योग्य दूरी को (तै) पार करके पहुँचता है।

रोइ पर्‌यौ हौं सुनि यह बात। चिंत चटपटी उपजी गात ।
इती आव हौं किततैं पैहौं। कौन भाँति जीवत घर जैहौं ॥३८॥

उनकी यह बात सुनकर मैं रो पड़ा। मेरे मन में तीव्र चिन्ता उत्पन्न हुई कि इस तन से मैं कैसे अपने घर पहुँच सकूँगा। मानव तन के रहते मैं किस प्रकार से पहुँच सकूंगा। यहाँ इतनी दूर आकर अब, किस भाँति जीवन धारण किये हुए ही अपने घर पहुँच सकूँगा ?

उन इक बाग बतायौ चाहि। कह्यौ जाइ उत मेवा खाहि ।
हौं उत गयौ लगी ही भूंख। मेवा खान लग्यौ चढ़ि रूख ॥३९॥

उन्होंने सद्भावपूर्वक विचार करके मुझे एक बाग का पता बता कर कहा कि उस बाग में जाकर मेवा खाओ। मैं (तमीम अनसारी) उनके कहने के अनुसार उधर गया, मुझे भूख लग रही थी। मैंने बाग में प्रवेश करके, पेड़ पर चढ़ कर मेवा खाना प्रारम्भ कर दिया।

तामैं एक सैंन उति आई। बजत निसान लयें गहराई ।
धर पर लगत न पग के कांन। सब पर जगत जराव पलांन ॥४०॥

इसी समायावधि में, उस बाग की ओर एक सेना का आगमन होता हुआ देखा। सेना ज्यों ज्यों निकट आती जा रही थी उसके साथ बजते आ रहे नगाड़ों की ध्वनि तीव्र होती गई। उस सेना में सभी सुन्दर चमकती जीन कसे अश्वों पर सवार थे। वे तीव्र गति से मानो उड़ते हुए आ रहे थे। अश्वों के पग धरती को नहीं छू रहे थे।

दूजी सैंन परै तें आई। इन दहुवनि मैं परी लराई ।
तब वै या सैनहि बिचराइ। खरे भये मोतर तर आइ ॥४१॥

उसी समय एक दूसरी सेना भी दूसरी ओर से आई। इन दोनों सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ। तब पहले से आई हुई सेना ने दूसरी आई इस सेना को हरा कर तितर-बितर करके भगा दिया। इसके बाद जीती हुई सेना के लोग मेरे पास, उस वृक्ष के नीचे आए, और खड़े हो गये।

हौं डरि पातनि में दुरि रह्यौ। तब उन ऐसैं मोसौं कह्यौ ।
उतरि आइ हौं उनि पैं आयौ। लीनौ संग तुरंग चढायौ ॥४२।

मैं डर कर पत्तों के मध्य छिप गया। तब उस सेना के लोगों ने मुझसे इस प्रकार कहा, "उतर कर नीचे आ।" मैं पेड़ से उतर कर उन सैनिकों के समीप पहुँचा। उन्होंने घोड़े पर बैठा कर मुझे अपने साथ कर लिया।

तुम को हौ मैं पूछ्यौ चाहि। भाष्यौ तुरकपदी हम आहि।
साहपदी हत मैं सरदार। हिंदूपदी भजावनहार ॥४३॥

मैंने बड़ी चाह से पूछा, "तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया कि हम तुर्क सेना के हैं। हिन्दू सेना को हराकर भगा देने वाली इस तुर्क सेना का मैं सरदार हूँ। मेरा पद - सेना का शाह अर्थात् शाहपदी है।

वह हिंदुवनि की भाजी सैंन। तैं जु निहारी अपने नैंन।
चलत चलत जब द्यौस बिहायौ। साहपदी अपनै घर आयौ ॥४४॥

तुमने जो सेना, अपनी आँखों के सामने हार कर भागती हुई देखी थी वह हिन्दुओं की सेना थी। इसके पश्चाद्, अश्व पर बैठकर उस सेना के साथ चलते चलते जब दिवस व्यतीत हो गया तब शाहपदी अपने घर पहुँचा।

कनक सिंघासन बैठ्यौ जाइ। हौं अपने ढिंगु लयौ बुलाइ।
पूछ्यौ कछू भेदु तैं पायौ। तर तैं किती दूरि लै आयौ ॥४५॥

वहाँ पर राजमहल में सोने के सिंहासन पर जाकर बैठ गया। उसने मुझे अपने समीप बुला लिया। उसने मुझसे पूछा कि तेरा - ज्ञान - अनुभव, इस विषय में क्या आकलन करता है कि उस लड़ाई वाले स्थान के वृक्ष से, यह स्थान, जहाँ हम विद्यमान है, कितनी दूरी पर है?

मैं भाष्यौ जानैं जगदीस। आये कोस एक सै बीस।
तब हंसि साहपदी फुरमायौ। सहस बरस कैं मारग आयौ ॥४६॥

मैंने कहा कि भगवान ही जानें कि "सही दूरी क्या है? परन्तु मेरा अनुमान तो यह है कि यह दूरी एक सौ बीस कोस की है। तब शाहपदी ने फरमाया कि यह दूरी इतनी है कि सामान्य व्यक्ति एक हजार बरस में इसे तय कर पायेगा।

पूछ्यौ कौन नग्र तुव धाम। प्रगट करहु सो लै कैं नाम।
मैं तब वापै कर्यौ परकास। नबी मदीनै मेरौ बास ॥४७॥

पुन: शाहपदी ने मुझसे यह पूछा कि तुम्हारा मूल निवास का धाम कौन से नगर में है? उस नगर का नाम बताओ। मैंने तब उनको यह बात बताई कि मैं नबी वाले मदीना नगर का रहने वाला हूँ।

जौ तू रहत मदीनै यार। हजरत कौ पायौ दीदार ।
मैं भाष्यौ हौं सेवक आहि। उनकौ मुख नित देखों चाहि ॥४८॥

शाहपदी ने सुनकर कहा, हे मित्र ! क्योंकि तूं मदीने में रहने वाला है तब तो तुझे देखने की रीति से मैंने हजरत मोहम्मद साहब के दर्शन प्राप्त कर लिए । मैंने यह कहा कि मैं उनका सेवक हूँ, मैं सदैव उन हजरत के दर्शनों का अभिलाषी रहता हूँ ।

साहपदी भाष्यौ यहु बैन । धंन धंन, धंन धंन मेरे नैंन ।
नबी दरस देख्यौ जिहिं नैंन। सो द्रिग मो द्रिग देखे अैंन ॥४९॥

शाहपदी ने यह बात कही कि आज मेरे नयन धन्य भाग्य वाले हो गए हैं। मेरे नैनों का होना सफल हुआ है । तुम्हारे जिन नयनों ने नबी का दर्शन प्राप्त किया है उन पवित्र हुए तुम्हारे नयनों को मेरे नयनों ने देखा है । अत: नबी के दर्शन इनके माध्यम से मिले हैं ।

मो चक्षि चूमे करी बधाई। पुनि मौकौं पूछ्यौ कहु भाई ।
हजरत जीवत हैं जगु मांहिं। तब मैं उत्तर दयौ जु नांहिं ॥५०॥

शाहपदी ने मेरे चक्षुओं को चूम कर बधाई प्रकट की । पुन: मुझसे यह पूछा कि हे भाई ! बताओ - हज़रत जग में जीवन प्राप्त किए हुए हैं अथवा नहीं । तब मैंने उनकी बात का उत्तर नहीं दिया ।

फिरि फिरि रोवत अरू पछितात। मैं काहे पूछी यह बात ।
बहुरि कह्यौ नंदन हैं मेरैं। उनहिं पठावहु जै मो डेरैं ॥५१॥

शाहपदी तब स्वयं रोने लगे और यह कह कर पछतावा करने लगे कि यह बात मैंने (गलती करके) क्यों पूछी? इसके बाद उन्होंने पुन: कहा कि मेरे लड़के हैं, आप उनको मेरे स्वयं के डेरे पर जाकर शिक्षा दें ।

जब संपूरन पढ़ंहिं कुरान। पूजऊं तबहिं ईछ तुव प्रान ।
उत लै चली पदी मोहि धाइ। पुंहचे जब दिन गयौ बिहाइ ॥५२॥

जब आप मेरे लड़कों को पूरी कुरान पढ़ा देंगे, तब मैं प्राण तक बलिदान करके आपकी इच्छाओं को पूरा करूँगा । इसके बाद शाहपदी की सेना की टुकड़ी मुझे अपने साथ लेकर तीव्र गति से दौड़कर चली । जब दिन व्यतीत हो गया तब हम डेरे पर पहुँचे ।

साहपदी सुत सनमुख आये। बहु आदर सौं मिलि घर लाये ।
भोजन अंन अनभाँति मंगाये। मोकौं भाये सो मैं खाये ।५३॥

शाहपदी के पुत्र, सम्मुख उपस्थित हुए । वे बहुत सम्मान से मिलकर मुझे अपने घर ले गए । उनके द्वारा मेरे लिए बहुत प्रकार के भोजन, अन्न मंगाकर परोसवाये गये । मुझे जो-जो पसंद आए वे भोजन - अन्न मैंने ग्रहण किए ।

चटरानि कह्यौ गुरू कछु पायौ । केतक कोस आज तू आयौ ।
तब मैं कह्यौ कोस सै दोइ । निहचैं यहु ठां उततें होइ ॥५४॥

उन चेला (शाहपदी के पुत्रों) आदि ने मुझसे पूछा कि, "हे गुरु क्या आपने इस बात का कुछ अनुमान लगाया है कि आज आपने कितने कोस मार्ग तय किया है ? तब मैंने कहा कि आज मैं उस स्थान से यहाँ डेरा तक, दौ सौ कोस चल कर आया हूँ, ऐसा मेरा अनुमान है ।"

तब हंसि कै चटरनि समुझायौ । सहस बरस कैं मारग आयौ ।
मैं वै चटरै बहुत पढ़ाये । साहपदी हूं तब उत आये ॥५५॥

तब चेला आदि ने हंसकर कहा - आज, एक हजार बरस तक तय की जा सकने वाली दूरी पार कर ली गई है। इसके बाद मैंने उन सब पुत्रों - शिष्यों आदि को पूरे प्रयासों से कुरान शरीफ (हदीस, शरीयत आदि) बहुत पढ़ाई । इसके बाद शाहपदी वहाँ आये ।

येक रैन सपुनौ में पायौ । जानत धाम मदीने आयौ ।
मिले सुता सुत, अति सुख पायौ । मैं जान्यौं दुख अलख गंवायौ ॥५६॥

वहीं पर निवास करते समय, रात्रि में मैंने एक ऐसा स्वप्न देखा कि मैं मदीना में आकर पहुँच गया हूँ। पुत्र और पुत्री आदि से मिलकर मैंने अत्यन्त सुख प्राप्त किया । मैं यह भी विश्वास कर बैठा कि विछोह का दुख भी उस असीम अलख शक्ति ने दूर कर दिया हैं।

कछू न देख्यौ जब हौं जाग्यौ । ह्वै निरास जब रोवन लाग्यौ ।
साहपदी रोवत सुनि पायौ । तब हौं अपनौं निकट बुलायौ ॥५७॥

जब मैं जगा, तब स्वप्न में अनुभूत, सुखद मिलन, दिखाई नहीं पड़ा । इस पर निराशा से मैं जब रोने लगा । शाहपदी ने मेरे रोने की आवाज सुन ली, तब उन्होंने मुझे अपने निकट बुलाया ।

पूछ्यौ किहि दीनौ दुख भाई । मै सपुनैं की बात जनाई ।
मो कर गहि उठि चल्यौ दयाइ, ।कह्यौ देहुं तुहि घर पुहंचाई ॥५८॥

उन्होंने पूछा कि, हे भाई ! तुमको किसने दुःख दिया है ? तब मैंने सपने में पाये सुख के, जागृत अवस्था में वह सब दिखाई न देने की बात उनको बताई । शाहपदी ने करूणा करके सान्त्वना से भरा व्यवहार करते हुए मेरा हाथ पकड़ लिया और उठ कर चल दिया । शाहपदी ने कहा कि, मैं तुमको तुम्हारे घर पहुँचाए देता हूँ ।

आगैं महल तक्यो इकि जर्‌यौ । निकट गये तारौ खुलि पर्‌यौ ।
बंदीवान भर्‌यौ धौराहर । तिन सिर पग दै निकसे बाहर ॥५९॥

इस अवस्था में चलते-चलते जब हम एक स्थान पर पहुँचे तब वहाँ एक किवाड़ों से युक्त महल देखा । जब हम निकट पहुँचे तब द्वार के किवाड़ों का ताला खुल गया । वह धवलगृह बन्दीवानों से भरा हुआ था । उनके सिर पर पग रख कर चलते हुए हम बाहर निकल आये ।

आगैं और महल डिठ आयौ । साहपदी उत लै मुहि धायौ ।
देखे ठाढें द्वै असवार । तिनकैं कर नांगी करवार ॥६०॥

आगे और अन्य महल दृष्टिगोचर हुआ । शाहपदी मुझे साथ लिए हुए तीव्रगति से चलकर उधर पहुँचा । उस महल के आगे दो अश्वारोही सैनिक खड़े थे । उनके हाथों में नंगी तलवारें थीं ।

बरे महल में करि अभिलाष । मारे परे निहारे लाख ।
उनकी नस तें रक्त ढराइ । नै कु, न रहत चल्यौई जाइ ॥६१॥

उस बड़े महल में बड़ी जिज्ञासा के साथ जब देखा तब उसने लगभग एक लाख व्यक्तियों को मृत अवस्था में देखा । उनकी नसों से, निरन्तर ही रक्त बह रहा था ।

निकसे तब दूजैं दरबार । वैसेई द्वै तके सुवार ।
तब मैं पूछ्यौ ये को आहिं । ऐसैं कह्यौ पदिनि कैं साहिं ॥६२॥

इसके पश्चात् वहीं आगे चलकर जब दूसरे राजभवन के द्वार में प्रविष्ट हुए तब वहाँ भी उसी प्रकार के हाथों में नंगी तलवारें लिए हुए दो अश्वारोही रखवाले देखे । तब मैंने शाहपदी जी से पूछा, "ये कौन हैं ?" तब तुर्क सेना शाह (सरदार) ने मुझे इस प्रकार बताया -

पहलै महल तके सो प्रेत । रखे बांधि लोगन दुख देत ।
ये सहीत है मेरे परे । ये सुवार रखवारे करे ॥६३॥

पहले महल में जो दृष्टिगोचर हुए थे, वे प्रेत थे । वे लोगों को बांधकर दु:ख दे रहे थे । ये मुझसे परे सत्यलोक है । ये सुरक्षा प्रहरी उनकी रक्षा करते रहते हैं ।

इनकी नेकी लिखिबौ करैं । कयामत लौं ये नाहिंन मरै ।
आगैं और महल में आये । प्रेत अनंत बंधे मैं पाये ॥६४॥

ये रक्षक इन दण्ड पा रहे लोगों की नेकी का लेखा तैयार करते हैं । ये जन कयामत के दिन तक मरते नहीं हैं

और स्थाई रूप से नियुक्त है। आगे चलने पर अन्य महल में पहुँचे। वहाँ अपार संख्या में बंधे हुए प्रेत विद्यमान थे।

निकसे दै उनकैं सिर चरन। एक प्रेत आयौ गजकरन।
साहपदी वासौं फुरमायौ। इत यहु मनुष फिरत भरमायौ ॥६५॥

उनके सिर पर पैर रखकर हम महल के बाहर निकले। तब वहाँ एक गजकर्ण प्रेत उपस्थित हुआ। शाहपदी ने उससे आदेशपूर्वक कहा कि यह मनुष्य (की योग्यता से युक्त) इधर आकर भटकता हुआ मुझे प्राप्त हुआ है।

याहि मदीनै जौ लै जाहि। करौं तोहि प्रेतन कौ साहि।
भाष्यौ देव सात दिन मांहि। ये अपनै घर सुख सौं जांहिं ॥६६॥

इसको तुम यदि मदीना ले जाओगे तब मैं तुमको समस्त प्रेतों का सरदार बना दूंगा। उस देव ने कहा कि मैं इसे सात दिवस में इसके घर मदीना में पहुँचा दूँगा। ये अपने घर सुखपूर्वक पहुँच जायेगा।

साहपदी इक दुवा सिखाई। कह्यौ याहि नित पठियहु भाई।
ज्यौं भूतनि कौ चलै न जोर। ना तर तोकौं डारैं तोर ॥६७॥

शाहपदी ने मुझे एक दुआ (इबादत) सिखाई और कहा कि हे भाई! इस दुआ को नित्य पढ़ते रहना। इस दुआ को पढ़ते रहने से तुम पर भूतों का दुष्प्रभाव कारगर नहीं हो पायेगा, अन्यथा तो यह भूत तुमको नष्ट कर डालेंगे।

चल्यौ संग लै कै मो प्रेत। जाकैं चित में दया न हेत।
मारन हित लै चढ्यौ अकास। मोहि न रही जीव की आस ॥६८॥

वह प्रेत जिसके चित्त में तनिक भी दया नहीं थी तथा प्राणियों के कल्याण (प्रेम) से भी कोई संबंध नहीं था, मुझे अपने साथ लेकर चल दिया। तब वह मुझको मार डालने के प्रयोजन से अपने साथ लेकर आकाश में ऊपर जा पहुँचा। मुझे उस समय जीवन की आशा नहीं रही।

तहां फिरस्तनि आंवन भयौ। पापी प्रेत पेख जरि गयौ।
उततें पर्‌यौ भोम हौं आइ। फूट्यौ सीस न टूटे पांइ ॥६९॥

उसी समय, वहाँ पर (फ़रिश्तों) देवदूतों का आगमन हुआ। पापी प्रेत उनको देखकर नष्ट हो गया। मैं आकाश से गिरकर भूमि पर आ गया। संयोगवश मेरा सिर भी नहीं फटा और न पैर ही टूटे।

उहै अचेत चेत्यौ उठि धायौ। आगे सुनहु कहा मैं पायौ।
येक सराइ तकी तिंह काल। तामैं धूंवो निकसत लाल ॥७०॥

अचेत हो जाने के पश्चात् जब मुझमें चेतना का संचार हुआ, तब मैं तीव्र गति से चल दिया । उसके पश्चात् मैंने जो प्राप्त किया वह मैं बता रहा हूँ, सुनो । मैंने एक सराय (धर्मशाला - भवन) देखी, जिसमें ऊपर की ओर लाल प्रकाश वाला धुँआ उठ रहा था ।

मैं जान्यौ इति मानस आहि । वा सराइ मैं पैठ्यौ चाहि ।
देखे लाल अमोलक भाँति । धूम नहीं है उनकी कांति ॥७१॥

मैंने उसे देखकर यह अनुमान लगाया कि इस भवन (सराय) में मनुष्य हैं और तब मैंने उस सराय में चाहकर प्रवेश किया । वहाँ अतिशय मूल्यवान 'लाल' रत्न देखे । वहाँ धुआँ नहीं था, अपितु लाल रंग की कान्ति सर्वत्र बिखर रही थी ।

द्वै मूठी मैं लये उठाइ । डारि दये बहुरैं पछिताइ ।
जीव बचन की ना ही दौर । तहां कहा लालच की ठौर ॥७२॥

मैंने पहले तो दो मुट्ठी भर कर वे लाल रत्न उठा लिए, किन्तु निरर्थक लाल रत्नों को वापिस फेंक दिया । जिस समय की परिस्थिति में केवल प्राणों की (मूल की) रक्षा हेतु ही सम्पूर्ण शक्ति से प्रयास करना, अपेक्षित था वहाँ पर, 'लाल' रत्न धन - संचय के लिए 'लालच' त्यागने योग्य कर्म था ।

बसतर नाहिं जू अंचुर बांधौं । कहा नेह लछी सौं नाधौं ।
यहु जिय जानि न लीनें लाल । निकस चल्यौ उततें तत्काल ॥७३॥

वस्त्र आदि का साधन भी नहीं था । लक्ष्मी के नेह से मुख्य कार्य को बाधित करना अनुचित समझा विवेक से ऐसा समझ कर मैंने वे लाल ग्रहण नहीं किए और वहाँ से तत्काल निकल कर बाहर आ गया ।

आगैं एक बडौ तर पायौ । ताकि छांहि दौरि हौं आयौ ।
आई नींद सोइ हौं गयौ । बहुरि जागि कैं बैठौ भयौ ॥७४॥

आगे चलने पर मार्ग में एक वृक्ष प्राप्त हुआ, मैं शीघ्रतापूर्वक चलकर उस वृक्ष की छाया में आ गया। नींद भी स्वाभाविक रूप से विवश करती है, वह आई । मैं सो गया । विश्राम कर लेने से, चेतना प्राप्त हो गई । मैं पुन: जाग कर बैठ गया ।

मानस रूप तरून इक आयौ । कह्यौ पंथ तैं नाहिं न पायौ ।
संग चलौं अरू पंथ बताऊं । तो कौं तेरैं घर पुहुचांऊ ॥७५॥

वहाँ उस समय एक तरूण (किशोर) जो मनुष्य के सदृश अपेक्षित सद्गुणों से युक्त था, आया । उसने मुझसे कहा कि तुमने समुचित पंथ प्राप्त नहीं किया है । मैं तुम्हारे साथ चलूंगा, मैं तुम्हें सुविधाजनक (मार्ग) पंथ बताऊंगा ।

मैं तुमको तुम्हारे घर पहुँचाऊँगा।

एक बात की दै मुहि बांहि। जौ हौं कहौ सू डारी नांही।
मैं तब कह्यौं न डार्यौ जाई। जो तू कहै सू करिहौं भाई ॥७६॥

तुम मुझे अपनी बाँह, मेरे हाथ में पकड़ा कर, इस बात का विश्वास दिलाओ, कि मैं जिस प्रकार की सलाह दूँगा उसी के अनुरूप तुम आचरण करोगे। फिरोगे नहीं। मैंने तब उसे विश्वास दिलाकर वचन दिया कि मैं तुम्हारी कही हुई बात को साधनापूर्वक पूरा करूँगा। हे भाई! यदि, मैंने आपसे अब आपकी कही बातों का पालन करने के लिए, हाँ कह दी है तो, मैं उस वचन की पूरी पालना करूँगा।

तब उन कह्यौ करौं ज्योनार। तूं इति बैठ हमारौ यार।
हौं उठ बैठ्यौ वहु दुरी गयौ। दूजैं दिन उहि आवन भयौ ॥७७॥

तब उस किशोर ने कहा कि मैं भोजन कर रहा हूँ। हे मित्र! तुम मेरे साथ बैठ कर भोजन कर लो। जब मैं भोजन करके उठ बैठा तब वह अदृश्य हो गया। उसी किशोर का दूसरे दिन वहीं पर आगमन हुआ।

मोहि खुवाइ भलैं ज्यौनार। कह्यौ बोल परि है तहिं यार।
मैं भाष्यौ हां तब दुरि गयौ। फिर दूजै दिन आवन भयौ ॥७८॥

दूसरे दिन मुझे भली - भाँति भोजन करवाकर उसने कहा कि हे मित्र! तुम इसी स्थान पर पड़े रह कर विश्राम कर लो। मैंने कह दिया कि, हाँ। तब वह अदृश्य हो गया। इसके बाद वह अगले दिन आया।

भोजन वाही भांति खुवाइ। वहै अवधि करि गयौ बिलाइ।
बहुरौं वैसी ही विधि आयौ। वहै बोल करि बहुरि बिलायौ ॥७९॥

उसी, पूर्व के दिन की भाँति भोजन करवाकर, उसी अवधि की बात कहकर पुन: अदृश्य हो गया। इसके पश्चात् पुन: उसी प्रकार से वह आया और भोजन खिलाकर पुन: अदृश्य हो गया।

तीजैं दिन रबि कियौ प्रकास। सुतरमुरग ह्वै आयौ पास।
कह्यौ पकरि तू मेरे पांइ। मैं पकरैं लैं चल्यौ उडाइ ॥८०॥

तीसरे दिन प्रात: जब रवि ने प्रकाश किया तब वह, शतुरमुर्ग का रूप रखकर मेरे पास आ गया। उसने मुझसे कहा कि तूं मेरे पैर पकड़ ले। मैंने उसके पैर पकड़ लिसा इसी विधि से वह मुझे उड़ा कर ले चला।

कोहतूर लै उतर्यौ जाइ। तीन धौंस उत गये बिहाइ।
तब मैं कह्यौ चलौ घर जाहिं। इतकी अवध बदी मैं नांहिं ॥८१॥

इसके बाद वह (पहाड़) कोहतूर में पहुँच कर उतरा । वहाँ तीन दिन व्यतीत हो गये । तब मैंने उससे कहा कि चलिये मुझे घर पहुँचाइए । यहाँ ठहरने की बात आपने मुझसे पूर्व संविदा में निश्चित नहीं की थी ।

इति कत बैठ्यौ कहि मुख खोल । तब उन कह्यौ न भूल्यौ बोल ।
मैं भाष्यौ भूलत ना बोल । तब मौंको इक दई गलोल ॥८२॥

तुम मुझको बता दो कि यहाँ ठहर कर किसलिए बैठे हो ? तब उस किशोर ने कहा कि मैं अपने पूर्व के वचन को भूला नहीं हूँ ।

कह्यौ तोहि अब घर पुहंचैहौं । पै जैहौं मग में जरि जैहौं ।
मेरी भस्म मिलाव गलोल । हौं जीऊं निबहौं तुव बोल ॥८३॥

किशोर ने यह कहा कि अब मैं तुमको तुम्हारे घर पहुचाऊँगा किन्तु मैं मार्ग में जल जाऊँगा । मेरी भस्म को गिलोल में मिलाकर रखना । मैं अपने जीवन को भी बलिदान करके, तुम्हें दिए अपने वचन को पूरा करूँगा ।

आगैं एक नग्र डिठ आयौ । कलमा लिख्यौ सकल मैं पायौ ।
हौं पढिकैं हस्यौ मनमांहिं । पढ्यौ हमारे संगी नांहिं ॥८४॥

आगे चलने पर एक नगर दिखाई पड़ा वहाँ दीवाल पर कुरान शरीफ का सम्पूर्ण कलमा लिखा हुआ था । मैं कलमा पढ़कर हर्षित हो गया । कलमा में मार्गदर्शन पढ़ा कि पंथ में हमारे कोई भी संगी नहीं हो सकते अर्थात् अपने स्वयं के विवेक से और स्वयं के परिश्रम से ही कार्य में सच्ची सफलता मिल सकती है ।

येक महल देख्यौ अति चार । पौर अजदहै अनत अपार ।
तब हम भीतर पैठे जाइ । कौतग देखे उति उठराइ ॥८५॥

आगे उसके साथ चलने पर एक भव्य महल देखा । उसमें अनन्त संख्या में सर्प थे । तब हम महल में अन्दर प्रविष्ट हुए । वहाँ ठहर कर हमने आश्चर्य भरे दृश्य देखे ।

कंचन कौ इक तखत बिछायौ । तापर सुतौ मानस पायौ ।
ताकौ मुख मानौ ससि पूनौं । उर पर आइ रहे कर दूनौं ॥८६॥

वहाँ कंचन का तख्त बिछा हुआ था । उस पर एक सोता हुआ मनुष्य हमने देखा । उसका चेहरा सुन्दर था जैसे क़ि मानों पूर्णिमा का शशि हो । उसके दोनों हाथ, उसके हृदय स्थल पर रखे हुए थे ।

अंगुरी मांहि मुद्रका आहि । कछू न पाऊं उपमा ताहि ।
इक पांइन इक सिर की ठौर । दोइ अजदहा ठाढ़े ओर ॥८७॥

उस सोते हुए सुन्दर मनुष्य के हाथ की उंगली में अँगूठी थी । जिसकी शोभा अनुपम थी । एक सर्प उसके पैरों की तरफ था । एक उसके सिर की ओर खड़ा था । इस प्रकार दोनों ओर दो सर्प खड़े थे ।

मेरैं संगी हाथ चलायौ । मुद्रक काढन कौं ललिचायौ ।
गेबी मरद एक प्रगटायौ । लोह गुरज कर लीयें आयौ ॥८८॥

मेरे साथी ने हाथ से प्रहार कर दिया वह मुद्रिका उंगली से निकालने के लिए, लालायित था । उस समय वहाँ रक्षा व्यवस्थानुसार एक भयंकर शक्तिशाली पुरूष प्रकट हुआ जो अपने हाथ में लोहे का गुरज (मुद्गर) लेकर आया था ।

ऐसी करी गुरज की मारि । होइ गयौ वहु जरि कै छारि ।
मोहि कह्यौ तू जाहि पराइ । को ऐसे पापी संग आइ ॥८९॥

उसने साथी पर लोहे के गुरज से ऐसे प्रहार किए कि वह जलकर राख हो गया । उस पुरूष ने मुझसे कहा कि तू दूर चला जा । ऐसे पापी के साथ, भला विवेकी व्यक्ति कैसे आ सकता है ?

मैं पूछ्यौ को सोवत भौंन, यहु मेरौ संगी हौ कौन ।
कह्यौ सुलैमां सोवत आहिं, ताकी छाप लैंन कैं चांहिं ॥९०॥

मैंने उससे पूछा कि यह जो इस भवन में, सो रहे हैं, वो कौन हैं ? मेरा संगी यह व्यक्ति कौन था ? उसने उत्तर दिया कि ये सोने के तख्त पर सोने वाले साहब सुलेमान हैं, तुम्हारा वह पापी संगी उनकी मुद्रिका की छाप लेना चाहता था ।

आयौ हौ जादूगर प्रेत । हम रखवारे लैन न देत ।
तोरि गलोलि डारि दै भाई । मै तब डारत बिलम न लाई ॥९१॥

वह एक जादूगर प्रेत था जो कि यहाँ तुम्हारे साथ आया था । हम लोग रखवाले हैं, जो किसी को सुलेमान की हाथ की उंगली में पड़ी मुद्रिका की छाप लेने नहीं देते हैं । हे भाई ! इस गिलोल को तोड़ कर फेंक दो । तब मैंने गिलोल को तोड़कर फेंक देने में विलम्ब नहीं किया ।

कह्यौ भस्म उहि जाइ निहारि । वाकैं कर की छाप निकारि ।
सो अपनी अंगुरी में डारी । तोकौं कोऊ सकै न मारि ॥९२॥

फिर उसने मुझसे कहा कि जादूगर प्रेत की भस्म को जाकर देखो और उसके हाथ की छाप (मुद्रिका) को उठा लो और अँगुलियों में कस के दबाकर रख लो । इसके बाद तुम्हें कोई भी मारने में समर्थ नहीं हो सकेगा ।

भस्म सोधि कैं मुद्रिका लही। अब कित जाहुं यहै मैं कही ।
पछिम दिसा की दीनी सैंन। हौं उठि चल्यौ धरत गुर गैंन ॥९३॥

मैंने भस्म में से खोज करके, मुद्रिका ग्रहण कर ली । मैंने उससे पूछा कि मैं अब किस ओर जाऊं? उसने मुझे संकेत से पश्चिम दिशा की ओर जाने के लिए कहा । इस मार्ग - दर्शन को ग्रहण करके मैं उसी दिशा में चल पड़ा ।

आगैं सुता अपछरा हेरी। वहु चलि आई मेरै नेरी ।
बिनती करत बहुत बिललात। कहौ न काहू सौं यहु बात ॥९४॥

आगे पहुँच कर मुझे अप्सरा की पुत्री मिली । वह चल कर मेरे निकट आई । वह विलाप करती हुई विनतीपूर्वक यह कहने लगी कि मैं अब तुमसे मिलकर कुछ गोपनीय बातें कहूंगी, इसे तुम किसी को भी नहीं बताना ।

छारि गयौ है जरि कैं प्रेत। गयौ हुतौ मुद्रक कैं हेत ।
वहु सब प्रेतन कौ पतिसाहि। हौं तौ बाकी तनया आहि ॥९५॥

वह प्रेत जलकर राख हो गया है । वह मुद्रिका लेने के लिए गया था । वह प्रेत समस्त प्रेतों का सरदार था । मैं तो उसकी पुत्री हूँ ।

अब लौं कोयहु भेदु न जानत। सकल प्रेत मोही कौं मानत ।
जौ लौं नाहिं परी उहिं कान। तौलौं मोहि पढ़ाव कुरान ॥९६॥

अब तक यह रहस्य की बात कोई भी नहीं जानता था । समस्त जन मुझे भी प्रेत ही समझते हैं । मैं चाहती हूँ कि जब तक समस्त लोगों को इस भेद का पता न चले तब तक तुम मुझे कुरान पढ़ा दो।

जौ कुरान मुहि पढिबौ आवै। प्रेतजूह बंधन कौं पावै ।
मैं तब कह्यौ पढाऊं तोहि। पै तू बात साँच कहि मोहि ॥९७॥

यदि मुझे कुरान पढ़ना आ जायेगा तब तो सम्पूर्ण प्रेत का समूह मेरे बंधन के वश में हो जायेगा । मैंने तब उसे अप्सरा की बेटी से कहा कि, "मैं तुझे कुरान पढ़ा दूँगा, परन्तु तुम मुझे यह बात सच'सच बता दो ।"

'तु' है परी हुतौ वहु प्रेत। पिता कह्यौ वाकौं किंह हेत ।
तब उन कह्यौ जु मेरी माता। रूपवंति अति रची विधाता ॥९८॥

तुम तो परी हो और वह पिता, प्रेत किस प्रकार से बना है ? यह सच-सच बता दो । तब उसने कहा कि, ''मेरी जो माता थी उसे विधाता ने सुंदर रूप वाली रचा था ।''

ता पर रीझ्यौ हौ यहु प्रेत । घर में कौं पैठन ना देत ।
इन दिन पिता अहेरैं गयौ । याकौ घर में आवन भयौ ॥९९॥

ऐसी मेरी माता पर वह रीझ गया था । वह मेरी माता को शांतिपूर्वक घर में नहीं बैठने देता था । एक दिन मेरा वास्तविक पिता शिकार खेलने के लिए (घर से बाहर) गया हुआ था । यह प्रेत मेरे घर में आ गया ।

ऐसौ जादू कीनों तब ही । गुंम भये रखवारे सबही ।
माता कौ कर पकर्‍यौ आई । करता सौं बिनती की माइ ॥१००॥

इसने घर में प्रवेश करते ही ऐसा जादू किया कि समस्त सुरक्षा प्रहरी लुप्त हो गये । उस प्रेत ने आ कर के मेरी माता का हाथ बलपूर्वक पकड़ लिया । ईश्वर से मेरी माता ने प्रार्थना की ।

या बैरी पै मोहि छिडाइ । मेरी सील ब्रित जिन जाइ ।
मोकौं अबहीं डारहु मारि । पेट माहिं कौ लेहु उबारि ॥१०१॥

किसी भी विधि से मेरा शील व्रत नष्ट न हो, इसके लिए मुझको तो मृत्यु प्रदान कर दो और मेरे पेट में जो बालक है उसे जन्म दे दो । मेरे हितों की इस शत्रु से रक्षा करो ॥

ये तो कहत निकरि हौं परी । माता बपरी तताछिन मरी ।
प्रेत देखिकै बहुत लजायौ । मोहि आपुनै घर ले आयौ ॥१०२॥

ऐसी विनती करते ही मैं माता के तन से बाहर आ गई और बेचारी माता उसी क्षण मर गई । प्रेत, यह दृश्य देख कर बहुत लज्जित हुआ । वह मुझे अपने घर ले आया ।

हौं तनया करि पाली प्रेत । मो सौं कर्‍यौ बहुत ही हेत ।
अब तू मोहि कुरान पढ़ावत । हौं तोहि तेरैं घर पुहंचावत् ॥१०३

प्रेत ने मुझे पुत्री मानकर, मेरा पालन-पोषण किया । उसने मुझसे बहुत प्रेम किया । अब तुम मुझे कुरान पढ़ाओगे । मै तुमको तुम्हारे घर पहुंचा दूंगी ।

मै कुरान सब वाहि पढायौ । येक प्रेत तब निकटि बुलायौ ।
कह्यौ जु मेरौ गुर यहु आहि । याकौं याकैं घर लै जाहि ॥१०४॥

मैंने उसे सम्पूर्ण कुरान पढ़ा दी । इसके पश्चात् उस परी ने एक प्रेत को अपने निकट बुलाया । उस प्रेत से उसने कहा कि यह मेरे गुरू हैं । इनको अपने साथ ले जा कर, इनके घर पहुँचा दो ।

देव कह्यौ जौ हों कछु पाऊं । सात द्यौस में लै पुहंचाऊं ।
देव चल्यौ लै संगी भयौ । येक द्यौस कहं वा दुरि गयौ ॥१०५॥

उस शक्ति संपन्न देव (प्रेत) ने कहा यदि तुम मुझे प्रतिफलस्वरूप कुछ दे दोगी तो, मैं इसको साथ लेकर सात दिवस में इसके घर पहुँचा दूँगा । देव मुझे साथ लेकर चल दिया । एक दिन मार्ग में वह कहीं छिप गया ।

ढूंढ रह्यौ कहुं वा ना लह्यौ । हौं तब हेखे-भेखे रह्यौ ।
आगें देख्यौ येक पहार । ता तर सलिल बसत अपार ॥१०६॥

मैंने उसे बहुत खोजा किन्तु वह मुझे नहीं मिला तब तो मैं हक्का-बक्का हो गया, और मैंने इधर-उधर देखा । मुझे एक पहाड़ दृष्टिगोचर हुआ । उस पहाड़ की तलहटी में अपार जल बह रहा था।

चढ़्यौ पहार नैंकु ठहरायौ । पीत बरन तंबू डिठ आयौ ।
महापुरष तामैं इक पायौ । ताकौं मैं सीस नवायौ ॥१०७॥

मैं उस पहाड़ पर चढ़ गया । वहाँ कुछ देर के लिए ठहरा तब मुझे एक पीले वर्ण का तंबू दिखाई पडा। उस तंबू में एक महापुरूष को मैंने देखा । उसके निकट जा कर मैंने, उसके सम्मुख शीश झुका कर प्रणाम किया ।

उन हाथनि सौं पलक उचाइ । कह्यौ कौन तू मोहि बताई ।
मानस आहि किधौं तू प्रेत । इत डोलत है काकैं हेत ॥१०८॥

उसने अपने हाथ से पलक ऊँची करके ध्यान से मुझे देख कर कहा कि तूं कौन है ? मुझे बता दे । तूं मनुष्य है? अथवा, क्या तू प्रेत है ? यहाँ किस प्रयोजन से भ्रमण कर रहा है ।

मैं सब अपनी बिपति सुनाई । वाकैं जीव दया तब आई ।
कह्यौ अबहिं रहु मेरैं पास । तेरी सब पुजऊं मन आस ॥१०९॥

मैंने उसके पूछने पर अपनी समस्त विपत्ति बता दी । उसके हृदय में तब 'जीव' के प्रति दया का संचार हुआ। उसने कहा इस समय तू मेरे पास आश्रय ग्रहण कर ले, मैं तेरी समस्त अभिलाषाओं को पूरा कर दूंगा ।

हाजी इति निकसैंगे आइ । उनकै संग तोहि देउं पठाइ ।
वै तुहि लै जैं तेरैं धाम । करता पुजवै मनसा काम ॥११०॥

मदीना जाने वाले हाजी लोग मेरे पास होकर जायेंगे । उनके साथ मैं तुझको (मदीना) भेज दूंगा । वे हाजी लोग तुझको अपने साथ तेरे घर मदीना ले जायेंगे । जगत् के रचयिता तेरे मन की इच्छा पूरी करेंगे ।

मैं वा संग निस द्यौस गंवाये। अवधि भई जब हाजी आये ।
आइ परे पुरखा कैं पांइ। कह्यौ भेंट दै करहु सहाइ ॥१११॥

मैं उनके साथ कतिपय दिनों तक अहर्निश रहा । जब उचित अवधि आ गई तब हाजी जन आये । उन सबने आदरपूर्वक उस बुजुर्ग के पैरों को छू कर प्रणाम किया । उनको सभी ने भेंट देकर प्रार्थना की कि इस तीर्थयात्रा में आप मार्ग-दर्शन देकर हमारी सहायता कीजिए ।

ज्यौ हम खेम कुसर सौं जै हैं। मका गुजार बहुरि इत अै हैं ।
महापुरूष तब दई असीस। खेम कुसर करि है जगदीस ॥११२॥

"कि हम कुशलक्षेम पूर्वक वहाँ पहुँचकर और मक्का तीर्थ में ठहर कर यात्रा करके वापिस पुन: यहा आ सके।" उन महापुरूष ने, तब आशीर्वाद देकर कहा कि संसार के स्वामी आप सबकी क्षेमकुशल रखेंगे ।

या मानस कौं सग लै जावहु। याहि मदीनै लै पुहंचावहु ।
बिदा भये वै कर्‌यौ जुहार। हौं संग लीनौ करि अति प्यार ॥११३॥

इस मनुष्य को अपने साथ ले जाओ और इसे मदीना पहुँचा देना । उन हाजी जनों ने विदा मांगते हुए उनको शीश झुकाकर प्रणाम किया । उन्होंने (हाजी जनों ने) मुझे बहुत प्यार करते हुए अपने साथ रख लिया ।

बैठे जै जिहाज कैं मांहिं। मोहि भलै संग लीयें जाहिं ।
तामैं कोह जु दर की ओर। चल्यौ जिहाज करैं सब सोर ॥११४॥

इसके पश्चात् आगे यात्रा करने के लिए वे सब जाकर एक पानी में चलने वाले जहाज में बैठ गए । मुझे भी भली प्रकार से जहाज में बिठा कर यात्रा कर रहे थे । तब कोह दर की ओर जब जहाज चला तब सभी शोर करने लगे ।

धका लयौ जब जाइ प्रहार। फटत जहाज न लागी बार ।
सगरौ सगं बूडि कै बह्यौ। हौं इक तखतैं ऊपर रह्यौ ॥११५॥

जब चल रहे जहाज ने पहाड़ से टकरा कर धक्का खाया तब जहाज के फटने में देर नहीं लगी सारा जहाज टुकड़े - टुकड़े होकर डूबने या बहने लगा । मैं उस समय जहाज से टूटे एक लकड़ी के तख्ते पर बैठा तैर रहा था ।

मगर सरप दूरहिं डरपावहिं। नैंकौ मेरैं निकट न आवहिं ।
चली येक दिन प्रबल बाइ। तखता लग्यौ उदधि तट जाइ ॥११६॥

जल में मगर और सर्प, दूर से ही मुझे भयभीत कर रहे थे । वे तनिक भी मेरे समीप नहीं आ रहे थे । एक दिन बड़ी तीव्र वायु चली जिसके कारण मेरा तख़्ता उस जलधि के तट पर पहुँच गया ।

हौं तब उतर्‌यौ करी न बार । आगैं आयौ येक पहार ।
ता ऊपर हौं चढि कैं पर्‌यौ । मरन हेत पै नाहि न मर्‌यौ ॥११७॥

मैंने तनिक भी अवसर नहीं गंवाया । मैं तत्क्षण तख़्ते से उतर कर किनारे पर उतर गया । आगे एक पहाड़ आया। मैं अब निर्भीक होकर (मरजिया) उस पहाड़ के ऊपरी भाग पर चढ़कर, मरण प्राप्त करने के लिए नीचे कूद पड़ा, किन्तु मैं मरा ही नहीं ।

तब उठि बन मे गयो रिसाय। जिन कोऊ पसु पंछी खाइ ।
जो देखै सो आप भजावै । मेरे नरैं कोइ न आवै ॥११८॥

तत्पश्चात् पुन: मैं क्रुद्ध होकर इस संकल्प से उठकर आगे बिना रक्षा की सोचे चल पड़ा कि चाहे तो मुझे अब पशु या पक्षी कोई भी खा जाये । आगे चलने पर जो भी पशु-पक्षी मुझे इस दृढ़ता से निर्भीक आगे बढ़ता, देखता हुआ वह स्वयं भय मान कर भाग जाता था । कोई भी मुझे इस रूप में देखकर मेरे समीप नहीं आता था ।

ब्रिछ तक्यौ इक छांहिं अपार । बारह सहज रहें असवार ।
तामैं बहुत जंजीरनि जर्‌यौ । येक पुरूष लटकत डिठि पर्‌यौ ॥११९॥

तभी मैंने, अपार छाया से युक्त एक वृक्ष देखा । वहाँ बारह हजार अश्वारोही सैनिक विद्यमान थे । उस वृक्ष पर बहुत सी साँकलों में बंधा एक पुरूष लटकता हुआ दिखाई दिया ।

उन पुछ्यौ तू मानस आहि। मैं 'हां' कह्यौ सुन्यौ उन चाहि ।
फिरि पूछ्यौ दुनिया कै मांहिं । झूँठि बोलि हैं लोग कि नाहिं ॥१२०॥

उन, जंजीरों में बँधे और लटकते, पुरूष ने मुझसे पूछा कि तूं तो मनुष्य है न ? मैंने 'हाँ' कहा, इसे उसने बड़े ध्यान से सुना । पुन: उसने पूछा कि दुनिया में व्यवहार में लोग, झूँठ बोलते हैं अथवा नहीं ॥

मैं जब 'हां' कौ सबद सुनायौ । कछु इक लटकि तेरै कौं आयौ ।
कह्यौ रहत जगु सुरा छकायौ । 'हां' सुनि और लटकि कुछ आयौ ॥१२१॥

मैंने जब 'हाँ' - यह शब्द सुनाया तब वह कुछ-कुछ नीचे को लटक आया । पुन: उसने कहा कि जगत् के सब लोग सुरापान से मद में चूर रहते हैं ? मैंने जब उसकी बात को सही बताते हुए 'हाँ' कहा तब मेरे शब्द को सुन कर वह और भी अधिक नीचे की ओर लटक आया ।

जूवा खेलत हैं नर नारी। 'हां' सुनि कै वहु लटक्यौ भारी ।
आइ फ़िरस्तैं बार न कीनी। गुरजनि की बाकैं सिर दीनी ॥१२२॥

पुनश्च, उसने पूछने के स्वर में कहा कि जग में, नर और नारी जुआ खेलते हैं ? मैंने कहा, 'हाँ' इसे सुन कर वह बहुत ही अधिक नीचे की ओर लटक आया। फरिश्ते ने इस समय तनिक भी विलंब नहीं किया, उसने लटके हुए व्यक्ति के सिर पर गुर्ज़ से अनेक चोटें मारीं ।

तू जायौ चाहत जगु मांहीं। अवधि भई छूटन की नाहीं ।
जकरि जंजीरनि सौं तिहिं बारि। ऊँचौ करि बांध्यौ तर डारि ॥१२३॥

फ़रिश्ते (देवदूत) ने कहा कि तूं संसार में जाना चाहता है किन्तु अभी तेरी मुक्ति का समय नहीं आया है । तत्पश्चात् फ़रिश्ते ने उस व्यक्ति को साँकल से तीन गुना बाँधकर, वृक्ष की ऊँची डाली पर लटका दिया ।

मैं पूछ्यौ तुम कौ धौं आहि। कह्यौ फिरिस्ते रचे इलाहि ।
पूनि पूछ्यौ यहु पापी कौन। कह्यौ दजाल कहत जिहं सो है ॥१२४॥

तमीम अनसारी अपनी कथा सुनाते हुए कह रहा है कि मैंने उस फ़रिश्ते से पूछा कि, "तुम कौन हो? फ़रिश्ते ने उत्तर दिया कि, "मुझे भी ईश्वर ने ही बनाया है । पुन: मैंने पूछा कि पेड़ पर बंधा हुआ यह प्राणी कौन है ? उसने उत्तर दिया कि यह दज़ाल है । इसके नाम को हर कोई जानता है ।

रोज़ कियामत जब प्रगटावै । तब यहु जग में आवन पावै ।
करै बहुत कौं बेईमान। ऐसो काफिर ना कोई आन ॥१२५॥

कयामत (प्रलय) होने पर ही यह संसार में आ सकेगा । इसके समान मानवता का हनन करने वाला बेदर्द इंसान और कोई नहीं है। यह अन्य लोगों को बेईमान बनाने में कुशल है ।

फिरि पूछ्यौ मैं किहिं दिसि जाऊं । उन पछिम कौ लीनौ नाउं ॥
हौं उठि चल्यौ लह्यौ इक बाग। तामै पैठत जागे भाग ॥१२६॥

तत्पश्चात् मैंने उस फ़रिश्ते से पुन: पूछा कि, "मैं किस दिशा की ओर प्रस्थान करूं ।" उसने पश्चिम दिशा की ओर जाने के लिए कहा। मैं उठकर, उसके द्वारा निर्देशित मार्ग पर चल पड़ा। तब मार्ग में मैंने एक बाग देखा। उस बाग में प्रवेश करते ही मेरा सौभाग्य चमक उठा ।

येक ब्रिछ तर करत नमाज। पुरखा पायौ पूजे काज ।
मैं वाकौं जै कर्यौ जुहार। आव कह्यौ उनि करिकै प्यार ॥१२७॥

एक वृक्ष के नीचे, मैंने एक नेक पुरूष बुजुर्ग को नमाज़ अदा करते देखा । मुझे उन्हें देखते ही यह विश्वास हो गया कि इनसे मुझे पूरी-पूरी सहायता मिल सकेगी । मैंने जाकर उनको प्रणाम किया। उन्होंने प्रेम के साथ, आश्रय देने वाले स्वर में, ''आओ'' - कहा ।

बहुर्‌यौ कह्यौ वहै तू नांहिं। ढूंढत जारि मदीनै मांहिं ।
कहत तमीम तिहारौ नाम। मैं तब उठि कैं कर्‌यौ सलाम ॥१२८॥

उन्होंने फिर मुझसे कहा कि, -कहीं तू वही व्यक्ति तो नहीं है जिसे मदीना नगर में खोजा जा रहा है। वे तुम्हारा नाम तमीम अनसारी बताते हैं । तब मैंने उठकर अति सम्मान के साथ उनसे 'सलाम' किया ।

कह्यौ अबहिं आगैं तूं जाहि। है इक पुरूष पुजावै चाहि ।
हौं तब येक रेन दिन धायौ। येक बाग में पुरखा पायौ ॥१२९॥

उन्होंने कहा तूं अभी, आगे चलता चला जा । आगे पहुँचने पर तुझको एक पुरूष मिलेगा जो तेरी चाह को पूरा कर देगा । तब मैं एक रात और एक दिन यात्रा करता ही रहा, परिणामस्वरूप एक बाग में, मैंने एक बुजुर्ग से सम्पर्क किया ।

आगैं है कीनी तसलीम । कह्यौ आव अनसार तमीम ।
भाष्यौ मोकौं पास बिठाइ। तोकों दैहों घर पुहंचाइ ॥१३०॥

उसने स्वयं आकर ईश्वर को धन्यवाद देते हुए मेरा स्वागत किया और कहा, ''तमीम अनसारी । आओ'', तत्पश्चात् मुझे अपने समीप बैठा कर कहने लगा कि, मैं तुमको तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा ।

केतक दिन रहु मेरैं पास। तेरैं मन पुजऊं आस ।
मैं उनकी सेवा मन लायौ। येक द्यौस ऐसैं फुरमायौ ॥१३१॥

कपितय दिन तुम मेरे पास रहो । मैं तुम्हारे मन की आशा को पूरा कर दूँगा । मैंने अपना मन पूर्ण-रूपेण उनकी सेवा में लगा दिया । एक दिन उन्होंने यह आदेश दिया ।

यहु गिर निकट जु देखत आहि। ता पर चढ़ि कर नीचे जाहि ।
अति कौतिग देखी ठहराइ । रहिं रैंन कौं मो ढिंगु आइ ॥१३२॥

कि, 'तू' सामने जो यह पहाड़ देख रहा है, इस पर चढ़कर, दूसरी ओर नीचे उतर कर चला जा । तूँ वहाँ दिन भर ठहर कर, कौतूहलपूर्ण बातें देखकर रात को मेरे पास आ जाना ।

हौं गिर चढि कैं नीचैं गयौ। पायौ बाग चैन मन भयौ ।
भांति - भांति के मेवा खाइ। अंचयौ झरना नीर अघाइ ॥१३३॥

मैं पहाड़ पर चढ़कर दूसरी ओर नीचे उतर गया। वहाँ मैंने एक बाग देखा, जिसे देखकर मेरे मन को बड़ा ही चैन मिला। उस बाग में मैंने अनेक प्रकार के मेवे खाये, अत्याधिक पानी पिया और तृप्ति प्राप्त की ।

झरनै ढिंगु देखी इक नारी। भूषन साजें बुढिया भारी ।
पीठ नई है रही कमान। और इते पर करत गुमान ॥१३४॥

झरनै के समीप मैंने एक नारी को देखा जो कि वृद्धावस्था वाली थी और अत्याधिक मात्रा में आभूषणों को पहने हुए थी। उसकी पीठ का आकार, नई कमान की तरह से पूर्णत: गोल हो रहा था। ऐसी दशा में भी वह वृद्धा नारी गुमान के भाव चेहरे पर लिए हुए थी। (इस दशा में भी उसे घमण्ड था)

पाटंबर पहरैं तन मांहिं। गहनैं कौं कछु लेखौ नाहिं ।
लाल जुवाहिर मोती रतन। कंचन रजित गढे करि जतन ॥१३५॥

वह शरीर पर रेशमी वस्त्र पहने हुए थी। वह अनगिनत संख्या में सोने एवं चाँदी के ऐसे आभूषण पहने थी कि जिनमें अत्यन्त यत्न से, कौशल पूर्वक लाल, जवाहिर और मोती आदि रत्न भी जड़े हुए थे ।

हैं धरनी लौं लांबे बार। माला फेरै बारम्बार ।
बोली ना, मैं कर्‌यौ सलाम। माला सैं न दई ल्यैं नाम ॥१३६॥

उस नारी के बाल धरती तक लम्बे थे। वह बारम्बार माला फेर रही थी। मैंने जब उसको, 'सलाम' कहा, तब उत्तर स्वरूपा कुछ भी नहीं बोली और माला पर ही दृष्टि गढ़ाये रही और नाम जपती रही ।

मैं पूछ्यौ तूं बूढ़ी बाम । क्यों भूषन साजे बेकाम ।
उनतौ सुनिकैं कीनी गई । और ओर तें बानी भई ।। १३७॥

मैंने उससे पूछा कि "तुम तो वृद्धा नारी हो, फिर व्यर्थ में, इस वृद्ध तन को आभूषणों से सजाने की इच्छा करती हो।" उसने मेरी बात को सुन कर बहुत अप्रसन्नता एवं प्रतिकूलता प्रकट की। तभी दूसरी दिशा से किसी व्यक्ति की आवाज सुनाई दी ।

सुनि लै रे तमीम अनसारी। बे अदबी तैं कीनी भारी ।
हम ते नाहिं डरत अनसारी। तब मौकौं उपज्यौ डर भारी ॥१३८॥

ऐ रे तमीम अनसारी ! सावधान हो कर सुन ले ! तुमने अत्यधिक अशिष्टता का व्यवहार किया है। ऐ

अनसारी! तूं हमसे डरता कैसे नहीं है । तब यह सुनकर मुझे अत्यन्त डर, अनुभव होने लगा ।

कांपत आयौ पुरखा पास । जो देख्यौ सो कर्‌यौ प्रकास ।
बहुरौं कह्यौ लागि कैं पांइ । भेदु सबै दीजै समुझाइ ॥१३९॥

मैं भय से काँपता हुआ वहाँ से चलकर किसी प्रकार उस बुजुर्ग के पास आ गया । तत्पश्चात् मैंने जो कुछ देखा - सुना वह सब बताया । पुन: मैंने उसके पैर पकड़ कर अति विनयपूर्वक उनसे प्रार्थना की कि आप समस्त रहस्य मुझे समझा दीजिए ।

ब्रहु को जिन तुम पास पठायौ । तुम को जिन हितु इतौ जनायौ ।
कौन तकी मैं ब्रिधा नारी । किन बानी भैवंत उचारी ॥१४०॥

वह व्यक्ति कौन था जिसने मुझे आपके पास भेजा था ? आप कौन है जिन्होंने कि मेरे ऊपर इतनी दया और प्रेम प्रकट किया है ? वह वृद्धा स्त्री कौन थी ? और भयभीत कर देने वाली वाणी, किस व्यक्ति की थी ?

जिन पठयौ तू मेरे पास । वहु तो है भाई इलियास ।
ख्वाजा खिजर हौं आपुन आहि । तेरे मन की पुजऊं चाहि ॥१४१॥

उस बुजुर्ग ने उत्तर दिया - जिसने तुझे मेरे पास भेजा था वह तो इलियास (इब्लीस - भड़काकर बेईमान बनाने वाला) है । मैं ख़्वाजा खिज़्र हूँ । मैं तेरे मन की चाह को पूरा करूँगा ।

गहिनौ सजें जु देखी बाम । है लछिमी छल ही सौं काम ।
वहु भै - सब्द पर्‌यौ तुहि कान । वहु याजूज सब्द पहिचान ॥१४२॥

तुमने गहनों से सजी जो (वृद्धा) नारी देखी थी, वह लक्ष्मी है, उसका चरित्र यही है कि वह सभी को छलती है। वह शब्द डराने वाला था और तेरे कान में दूसरी ओर से आया था वह (कुंपंथगामी यजद) याजूज का शब्द था ।

अब तू मन कौं ठाहर राख । पूजैगी मन की अभिलाष ।
मैं तब उनसैं पूछ्यौ चाहि । केतक दूरि मदीनौं आहि ॥१४३॥

बुजुर्ग ने निर्देश दिया कि तू अब अपने मन को स्थिर कर ले । तेरे मन की पवित्र अभिलाषा पूरी होगी । तब मैंनें बड़ी चाह के साथ उनसे पूछा कि मदीना यहाँ से कितनी दूर है ।

द्वै सै बरसन कौ मगु आहि । तब मैं सुनि कर कीनौ आहि ।
रोवन लाग्यौ धीरज गयौ । ख्वाज खिजर किपाल अति भयौ ॥१४४॥

दो सौ वर्ष चलकर, पार करने योग्य - उस मार्ग की दूरी है । इतनी अधिक दूरी सुन कर - अपनी अल्प सामर्थ्य और असहाय अवस्था के कारण दु:ख के कारण मुँह से आह निकल पड़ी । मेरा धैर्य समाप्त हो गया और मैं रोने लग गया । दयालु ख़्वाजा खिज्र ने मुझ पर पूर्ण कृपा की ।

कह्यौ, ''देखि ! कर ताकी बात । तो कौं कैसें घर लै जात ।
हाथ पकरि मोकौं बैठायौ । येक जूह बादर कौ आयौ ॥१४५॥

उन्होंने कहा, देख ! उस विषय की बात कर - कि अब तुझको किस अद्भुत रीति से, तेरे घर पहुँचाता हूँ ? तत्पश्चात् उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर, अपने समीप बैठा लिया । इसके पश्चात् एक बादलों का समूह वहाँ आया ।

पूछ्यौ हुक्म कहाँ कौ आहि । कह्यौ रूम कौ भाष्यौ जाहि ।
बादर और इहीं बिधि आये । ऐसैं ही वै पूछि पठाये ॥१४६॥

उस बुजुर्ग महोदय से बादल - समूह ने पूछा कि कृपया आदेश कीजिए कि हमें कहाँ जाना होगा ? ख़्वाजा खिज्र ने आदेश दिया कि ''रोम को जाओ । अन्य बादल भी इसी भांति आदेश मांगने आये। उन्होंने पूछा तब ख़्वाजा साहब ने व्यवस्थानुरूप आदेश दे दे कर उन बादलों को अन्यान्य स्थानों पर भेज दिया ।

पुनि आये तिन भाखी बात । नग्र मदीनैं कौं हम जात ।
तिनकौं ख़्वाज खिजर फुरमायौ । इत भरमत यहु मानस आयौ ॥१४७॥

तत्पश्चात् एक दूसरा बादल समूह आया । उसने, बुजुर्ग ख़्वाजा खिज्र से विनम्र निवेदन किया कि, ''हम मदीना नगर को जा रहे हैं, तब उन बादलों को ख्वाजा खिज्र ने आदेश दिया कि भटकते हुए यह मनुष्य यहाँ आ गया है।

याकौं घर को बढ्यौ उसाहु । तुम अपनै संग इहि लै जाहु ।
मोसौं इक बादर लपटायौ । ठाहर न करी इतहिं लै आयौ ॥१४८॥

इसमें अपने घर जाने का अत्यन्त उत्साह है । इसको तुम अपने साथ (मदीना) ले जाओ । ख्वाजा के आदेश की पालना में मुझे (मेरा शरीर उस समय किस प्रकार की तन्मात्राओं में था) एक बादल ने मुझे लपेटकर उठा लिया, फिर वह बिना विलम्ब किये मुझे यहाँ ले आया ।

उमर अमीर दिलासा कीनी । याकी तिय याही कौं दीनी ।
यहु सुख सौं अपने घर आयौ । दुख सिगरौ करतार गंवायौ ॥१४९॥

तमीम अनसारी की पूरी व्यथा कथा सुन कर खलीफा उमर ने उसे सान्त्वना दी तथा उसकी धर्मपत्नी उसे लौंटा दी । ईश्वर ने उसका समस्त दु:ख दूर कर दिया ।

संवत सत्रह सै द्वै भनियें । सन हजार पंचावन गनियें ।
सुलप कथा बांधी कवि जान । बांचत लिखत न ह्वै अरसान ॥१५०॥

संवत सत्रह सौ दो, हिजरी सन् एक हजार पिचानवै अर्थात् ई. सन् सोलह सौ पैंतालिस में न्यामत खाँ, उपनाम जानकवि ने यह तमीम अनसारी की कथा अत्यन्त संक्षिप्त कथानक के साथ के साथ प्रबन्धित की है । अत: ऐसी आशा की जा सकती है कि इसका पाठ करने एवं इसको लिखने में आलस्य के लिए स्थान नहीं होगा ।

पुष्पिका -: इति तमीम अनसारी की कथा संपूर्न १७७७ फागुन सुदी ८ ।

अर्थ - इस प्रकार तमीम अनसारी की कथा फागुन सुदी ८ वि. सं. सत्रह सौ सतत्तर में लिखी गई।

राजस्थान सरकार

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

पी. डब्ल्यू. डी. रोड, जोधपुर

राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रकाशन - सूची (वर्ष 2003)

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	मूल्य
1.	त्रिपुराभारतीलघुस्तव सटीक	मुनि जिनविजय	10.00
2.	कर्णामृतप्रपा	मुनि जिनविजय	10.00
3.	बालशिक्षा–व्याकरण	मुनि जिनविजय	40.00
4.	प्रमाणमञ्जरी सटीक	पट्टाभिराम शास्त्री	अनुपलब्ध
5.	यन्त्रराजरचना	केदारनाथ ज्योतिर्विद्	अनुपलब्ध
6.	महर्षिकुलवैभव	गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी	77.00
7.	वृत्तिदीपिका	पुरूषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी	10.00
8.	राजविनोदमहाकाव्य	गोपालनारायण बहुरा	अनुपलब्ध
9.	तर्कसंग्रहफक्किका	डा. जितेन्द्र जेटली	46.00
10.	प्राकृतानन्द	मुनि जिनविजय	20.00
11.	कान्हड़देप्रबन्ध	प्रो. के. बी. व्यास	111.00
12.	उक्तिरत्नाकर	मुनि जिनविजय	25.00
13.	क्यामखां रासा सानुवाद	डा. दशरथ शर्मा, अगरचन्द भंवरलाल नाहटा अनु डॉ. रतनलाल मिश्र	124.00
14.	कूर्मवंशयशप्रकाश (लावारासा)	महताबचन्द खारेड़	56.00
15.	श्रृंगारहारावली	डा. प्रियबाला शाह	20.00
16.	कृष्णगीति	डा. प्रियबाला शाह	10.00
17.	नृत्तसंग्रह	डा. प्रियबाला शाह	10.00
18.	कारकसम्बन्धोद्योत	एच. पी. शास्त्री	10.00
19.	शब्दरत्नप्रदीप	एच. पी. शास्त्री	10.00
20.	चक्रपाणिविजयमहाकाव्य	प्रो. के. के. शास्त्री	25.00
21.	बांकीदास री ख्यात	प्रो. नरोत्तमदास स्वामी	40.00
22.	दुर्गापुष्पांजलि	गङ्गाधर द्विवेदी	40.00
23.	दशकण्ठवध	गङ्गाधर द्विवेदी	35.00
24.	नृत्यरत्नकोश (भाग 1)	प्रो. आर. सी. पारीख एवं डा. प्रियबाला शाह	50.00
25.	नृत्यरत्नकोश (भाग 2)	डा. प्रियबाला शाह	45.00
26.	कर्णकूतूहल	गोपालनारायण बहुरा	10.00
27.	राजस्थानी साहित्य संग्रह (भाग 1)	प्रो. नरोत्तमदास स्वामी	43.00
28.	वासवदत्ता–कथा	डॉ. जे. एम. शुक्ल	30.00
29.	ईश्वरविलासमहाकाव्य	भट्ट मथुरानाथ शास्त्री	अनुपलब्ध
30.	पद्यमुक्तावलि सटीक	भट्ट मथुरानाथ शास्त्री	35.00
31.	राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज	अनु. बी. डी. त्रिवेदी	15.00
32.	जुगलविलास	रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत	20.00
33.	वीरवांण	रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत	72.00
34.	कवीन्द्रकल्पलता	मुनि जिनविजय	15.00
35.	गोरा–बादल पद्मिनी चाउपई	डा. उदयसिंह भटनागर	56.00

36.	वसन्तविलास–फागु	प्रो. एम. सी. मोदी	35.00
37.	स्वयंभूच्छन्द	प्रो. हरिदामोदर वेल्हणकर	15.00
38.	पदार्थरत्नमञ्जूषा	मुनि जिनविजय	10.00
39.	चान्द्रव्याकरण	पं. बेचरदास जीवराज डोसी	50.00
40.	गोराबादलचरित्र	मुनि जिनविजय	75.00
41.	रसदीर्घिका	गोपालनारायण बहुरा	20.00
42.	हस्तलिखित ग्रन्थसूची भाग 1		30.00
43.	भगतमाल (ब्रह्मदास कृत)	उदयराज उज्ज्वल	39.00
44.	राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ, सूचीभाग 1		37.50
45.	वस्तुरत्नकोश	डा. प्रियबाला शाह	20.00
46.	काव्यप्रकाश (प्रथम भाग)	प्रो. रसिकलाल सी. पारीख	70.00
47.	काव्यप्रकाश (द्वितीय भाग)	प्रो. रसिकलाल सी. पारीख	40.00
48.	मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग 1	बद्रीप्रसाद साकरिया	अनुपलब्ध
49.	मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग 2	बद्रीप्रसाद साकरिया	उपलब्ध
50.	रघुवरजसप्रकाश	सीताराम लालस	75.00
51.	हस्तलिखित ग्रन्थसूची, भाग 2	गोपालनारायण बहुरा	12.00
52.	राजस्थानी साहित्य–संग्रह, भाग 2	डा. पी. एल. मेनारिया	25.00
53.	राजस्थानी साहित्य–संग्रह, भाग 3	लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	65.00
54.	श्री भुवनेश्वरीमहास्तोत्र	गोपालनारायण बहुरा	47.00
55.	विद्याभूषणग्रन्थ सूची	गोपालनारायण बहुरा एवं लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	10.00
56.	सूरजप्रकाश, भाग 1	सीताराम लालस	75.00
57.	सूरजप्रकाश, भाग 2	सीताराम लालस	90.00
58.	राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 2	पुरूषोत्तमलाल मेनारिया	15.00
59.	महर्षिकुलवैभव (मूल)	प्रद्युम्न शर्मा	30.00
60.	रत्नपरीक्षादि सप्तग्रन्थ–संग्रह	अगरचन्द नाहटा एवं भंवरलाल नाहटा	67.00
61.	वृत्तजातिसमुच्चय	हरि दामोदर वेल्हणकर	35.00
62.	कविदर्पण	हरि दामोदर बेल्हणकर	40.00
63.	नेहतरंग	डा. रामप्रसाद दाधीच	30.00
64.	एकाक्षरनामकोश–संग्रह	मुनि रमणीकविजय	60.00
65.	हम्मीरमहाकाव्य	मुनि जिनविजय,	74.00
66.	मत्स्यप्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन	डा. मोतीलाल गुप्त	60.00
67.	सूरजप्रकाश, भाग 3	सीताराम लालस	95.00
68.	समदर्शी आचार्य हरिभद्र	अनु. शान्तिलाल जैन	25.00
69.	वृत्तमुक्तावली	भट्ट मथुरानाथ शास्त्री	20.00
70.	इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध	डा. दशरथ शर्मा	अनुपलब्ध
71.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स पार्ट 1	मुनि जिनविजय	अनुपलब्ध
72.	मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग 3	बद्रीप्रसाद साकरिया	68.00
73.	बुद्धिविलास	डा. पद्मधर पाठक	40.00
74.	रूक्मिणी–हरण	डा. पी. एल. मेनारिया	35.00
75.	प्रतापरासो	डा. मोतीलाल गुप्त	60.00
76.	सन्त कवि रज्जब	डा. ब्रजलाल वर्मा	65.00
77	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स पार्ट 2 ए	मुनि जिनविजय	अनुपलब्ध
78.	भक्तमाल (राघोदास कृत)	अगरचन्द नाहटा	70.00
79.	वृत्तमौक्तिक सटीक	म. विनयसागर	125.00

80.	पश्चिमी भारत की यात्रा (हिन्दी–अनुवाद)	गोपालनारायण बहुरा	182.00
81.	ए केटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स पार्ट 2 बी	मुनि जिनविजय	36.50
82.	ए केटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स पार्ट 2 सी	मुनि जिनविजय	21.00
83.	बिन्हैरासौ	सौभाग्यसिंह शेखावत	65.00
84.	सोढ़ायण	शक्तिदान कविया	65.00
85.	ए केटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 3 ए	मुनि जिनविजय	38.50
86.	मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग 4	बद्रीप्रसाद साकरिया	67.00
87	मधुमालती कथा सचित्र	डा. फतहसिंह	55.00
88.	आगमरहस्य–पूर्वार्द्ध	गंगाधर द्विवेदी	110.00
89.	शकुनप्रदीप	मुनि जिनविजय	अनुपलब्ध
90	पाठ्यरत्नकोश	गोपालनारायण बहुरा	20.00
91.	ए केटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 3 बी	मुनि जिनविजय	48.75
92.	नन्दोपाख्यान	मुनि जिनविजय	10.00
93.	राठौड़ वंश री विगत एवं वंशावली	मुनि जिनविजय	42.00
94.	चण्डीशतक	गोपालनारायण बहुरा	40.00
95.	कविकौस्तुभ	मुनि जिनविजय	10.00
96.	मीरां बृहत्पदावली, भाग 1	हरिनारायण पुरोहित	51.00
97.	स्थूलिभद्रकाकादि	डा. आत्माराम जाजोदिया	15.00
98.	राजस्थानी वीरगीत–संग्रह, भाग 1	सौभाग्यसिंह शेखावत	55.00
99.	गजगुणरूपकबन्ध	सीताराम लालस	80.00
100.	राजस्थानी वीर गीत–संग्रह भाग 2	सौभाग्यसिंह शेखावत	50.00
101.	मारवाड़ रा परगना री विगत भाग 1	डा. नारायणसिंह भाटी	130.00
102.	वैताल पच्चीसी	डा. पी.एल. मेनारिया	अनुपलब्ध
103.	देवीचरित, भाग 1	हुक्मचन्द्र चतुर्वेदी	90.00
104.	राजनीति रा कवित्त	डा. नारायणदत्त श्रीमाली	40.00
105.	सिन्धुघाटी की लिपि में ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रतीक	डा. फतहसिंह	15.00
106.	शंकरीसंगीत	लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	10.00
107.	संघपति रूपजी–वंश–प्रशस्ति	म. विनयसागर	10.00
108.	सनत्कुमारचक्रिचरित–महाकाव्य	म. विनयसागर	75.00
109.	पथ्यास्वस्ति	सुरजनदास स्वामी	67.00
110.	आगमरहस्य (उत्तरार्द्ध)	गंगाधर द्विवेदी	95.00
111.	मारवाड़ रा परगना री विगत भाग–2	डा. नारायणसिंह भाटी	105.00
112.	मन्त्रभागवत	डा. श्रद्धा चौहान	15.00
113.	देवीचरित, भाग 2	हुक्मचन्द चतुर्वेदी	140.00
114.	सांख्यायनतन्त्र	लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	35.00
115.	सिंहसिद्धान्तसिन्धु भाग 1	लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	100.00
116.	राजस्थानी वीरगीत–संग्रह भाग 3	सौभाग्यसिंह शेखावत	95.00
117.	बालतन्त्र	कविराज विष्णुदत्त पुरोहित	25.00
118.	नरसीजी रो माहेरो	प्रो. जेठालाल नारायण त्रिवेदी	45.00
119.	संगीत रघुनन्दन (व्यंग्यार्थचन्द्रिका टीका सहित)	डा. दशरथ शर्मा	30.00
120.	मीरां बृहत्पदावली, भाग 2	डा. कल्याणसिंह शेखावत	70.00
121.	मारवाड़ रा परगना री विगत भाग 3	डा. नारायणसिंह भाटी	110.00

122.	राजस्थनी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग 3	ओंकारलाल मेनारिया	14.50
123.	सिंहसिद्धान्तसिन्धु भाग 2	लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	140.00
124.	खण्डप्रशस्ति	म. विनयसागर	50.00
125.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 4	मुनि जिनविजय	32.00
126.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 5	ओमप्रकाश शर्मा	17.00
127.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 6	रमानन्द सारस्वत	14.75
128.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग 4	ओंकारलाल मेनारिया	34.00
129.	राजस्थानी वीरगीत संग्रह, भाग 4	सौभाग्यसिंह शेखावत	70.00
130.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 7	म. विनयसागर एवं डा. डी. बी. क्षीरसागर	17.00
131.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 8	द्वारकानाथ शर्मा एवं ठाकुरदत्त जोशी	16.00
132.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 9	म. विनयसागर एवं डा. डी. बी. क्षीरसागर	20.75
133.	महाराजा मानसिंह री ख्यात	डा. नारायणसिंह भाटी	102.00
134.	रतनरासो—भूमिका, भाग	डा. रघुवीरसिंह एवं काशीराम शर्मा	55.00
135.	हमीररासो	अगरचन्द नाहटा	अनुपलब्ध
136.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 10	डा. डी. बी. क्षीरसागर व स्वरूपनारायण शर्मा	42.00
137.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 11	म. विनयसागर व जमुनालाल बल्दवा	86.50
138.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 12	डा. ब्रजमोहन जावलिया	62.00
139.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 13	भूरामल यति	73.00
140.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 14	द्वारकानाथ शर्मा	36.00
141.	गोविन्दानन्दघन	डा. मोतीलाल गुप्त	88.00
142.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 5	ओंकारलाल मेनारिया व म. विनयसागर	62.00
143.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 6	ओंकारलाल मेनारिया व म. विनयसागर	79.00
144.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 8	डा. डी. बी. क्षीरसागर ब्रजेशकुमारसिंह	58.50
145	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 15	द्वारकानाथ शर्मा	42.00
146.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 17	द्वारकानाथ शर्मा	60.00
147.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 19	डा. डी. बी. क्षीरसागर	37.50
148.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 16	ओमप्रकाश शर्मा व ब्रजेशकुमार सिंह	75.75

149.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 20	भूरामल यति	46.00
150.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 18	म. विनयसागर व जमुनालाल बल्दवा	105.50
151.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 21	ओंकारमल मेनारिया, म. विनयसागर व वेणीमाधव शर्मा	147.00 61.00
152.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 22	डा. ब्रजमोहन जावलिया	
153.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 11	डा. शशि शर्मा	51.00
154.	कामाभिनन्दन–महाकाव्य	डा. डी. बी. क्षीरसागर एवं ओ. पी. शर्मा	17.00
155.	अजीत विलास	डा. शिवदत्तदान बारहठ	33.00
156.	राजस्थानी हिन्दी संक्षिप्त कोश भाग 1	डा. सीताराम लालस	120.00
157.	राजस्थानी हिन्दी संक्षिप्त कोश भाग 2	डा. सीताराम लालस	145.00
158.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 10 (देराश्री संग्रह)	डा. ब्रजमोहन जावलिया व डा. डी. बी. क्षीरसागर	35.00
159 .	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 9	डा. रामकिशन जाटव	38.00
160.	सिंहसिद्धान्तसिन्धु, भाग 3	लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	82.00
161.	स्वजीवनी (राय मेहता पन्नालाल)	ओंकारलाल मेनारिया	65.00
162.	नन्दबत्रीसी	एच. सी. भायाणी	40.00
163.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची,भाग 7	ओ. पी. शर्मा व एम. एल. आचार्य	82.00
164.	सुरतरंग	डा. डी. बी. क्षीरसागर एवं डा. एम. एम. एस. माथुर	21.00
165.	रसमकरंद	डा. डी. बी. क्षीरसागर	31.00
166.	सूरसिंहवंशप्रशस्ति	ओ. पी. शर्मा	10.00
167.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 23	रतनलाल कामड एवं भूरामल यति	46.00
168.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 24	द्वारकानाथ शर्मा	56.00
169.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 25	नाथूलाल त्रिवेदी व ओ. पी. शर्मा	99.00
170.	ए केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 26	भूरामल यति एवं	48.00
171.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 12	कृष्णलाल विश्नोई डा. राजेन्द्रनाथ पुरोहित	74.00
172.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 13	डा. ब्रजमोहन जावलिया एवं डा. डी. बी. क्षीरसागर	78.00
173.	अचलदास खींची री वचनिका	डा. शम्भूसिंह मनोहर	76.00
174.	मानप्रकाश सानुवाद	के. एल. दुबे	37.00
175.	देराश्री संग्रह के दस्तावेजों की सूची	डा. पद्मधर पाठक	86.00
176.	महाराजा तखतसिंह री ख्यात	डा. नारायणसिंह भाटी	122.00
177.	पुण्डरीक ग्रन्थावली	वैद्य बुद्धिप्रकाश आचार्य	160.00

178.	सायणीयनिरूक्तिकोश	डा. डी. बी. क्षीरसागर	68.00
179.	संगीतमाधव	डा. गोविन्दराम चरौरा	29.00
180.	राजस्थानी हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 14	डा. रामकिशन, डा. विनोद कुमार एवं डा. देवकुमार	57.00
181.	शत्रुशल्यचरित , भाग 1 (संस्कृत टीका व आंग्ल अनुवाद सहित)	डा. भोलाशंकर व्यास	156.00
182.	शत्रुशल्यचरित, भाग 2	डा. भोलाशंकर व्यास	105.00
183.	तखतविलास चम्पू	ओ. पी. शर्मा एवं डा. गोविन्दराम चरौरा	22.00
184.	नन्दीसूत्र प्रभाव्याख्या सहित	म. विनयसागर	113.00
185.	महाराजा विजयसिंह री ख्यात	ब्रजेशकुमारसिंह	60.00
186.	ए केटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, पार्ट 27	डा. उषा गोस्वामी	70.00
187.	आनन्दमाला	वैद्य बुद्धिप्रकाश आचार्य	140.00
188.	नैषधमहाकाव्य (पूर्व भाग) सटीक	डा. जयदेव जानी	237.00
189.	हमीरमहाकाव्य (हिन्दी अनुवाद)	पं. नाथूलाल त्रिवेदी	102.00
190.	राजस्थान के नाथ सम्प्रदाय और साहित्य	डा. डी. बी. क्षीरसागर एवं डा. नवलकृष्ण	130.00
191.	पं. मधुसूदन ओझा की सारस्वत साधना भाग 1	डा. फतहसिंह एवं डा. गोविन्दराम चरौरा	130.00
192.	जोगप्रदीपका	डा. एम. एल. धरोटे	70.00
193.	पं. मधुसूदन ओझा की सारस्वत साधना भाग 2	डा. फतहसिंह एवं डा. गोविन्दराम चरौरा	110.00
194.	राजस्थान के ऐतिहासिक भाषा काव्य	ओ. पी. शर्मा	120.00
195.	राठौड़ां री ख्यात (हिन्दी अनुवाद)	कैलाशदान उज्ज्वल एवं पुष्पेन्द्रसिंह	55.00
196.	राजस्थान का ऐतिहासिक संस्कृत साहित्य	ओ. पी. शर्मा एवं ब्रजेशकुमारसिंह	90.00
197.	हमीरायण	डा. ब्रजमोहन जावलिया	205.00
198.	राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ सूची भाग 15	श्रीमती कलावती माथुर	125.00
199.	राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ सूची भाग 16	डा. गोविन्दराम चरौरा	70.00
200.	राजस्थान का ऐतिहासिक गद्य साहित्य	डा. डी. बी. क्षीरसागर एवं ओमप्रकाश शर्मा	110.00
201.	राजरत्नाकर भूमिका तथा अनुवाद सहित	डा. मूलचन्द पाठक	155.00
202.	राज. हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग 17	डा. कृष्णलाल विश्नोई	130.00
203.	राज. हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग 18	डा. कृष्णलाल विश्नाई	145.00
204.	राज. हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग 19	डा. गोविन्दराम चरौरा	105.00
205.	काव्यरस	डा. देवेन्द्र	105.00
206.	राजस्थान का संत साहित्य	डा. वसुमती शर्मा एवं कमलकिशोर साँखला	275.00

प्रतिष्ठान पत्रिका

अंक 1	वर्ष 1	1985	31.00
अंक 2	वर्ष 2	1986	31.00
अंक 3	वर्ष 3	1987	21.00
अंक 4–5	वर्ष 4–5	1988–1989	64.00
जान कवि विशेषांक		2003	35.00

व्यापारिक शर्तें

बिक्री पर कमीशन निम्न प्रकार दिया जावे :–

1. 1 से 499/– रूपये तक की बिक्री पर – 10 प्रतिशत कमीशन
2. 500/– रूपये तक तक की बिक्री पर – 15 प्रतिशत कमीशन
3. 501/– से 2,000 /– रूपये तक – 25 प्रतिशत कमीशन
4. 2001/– से 4,000 /– रूपये तक – 30 प्रतिशत कमीशन
5. 4001 /– से ऊपर की बिक्री पर – 40 प्रतिशत कमीशन.

प्राप्ति स्थान :

(मुख्यालय एवं शाखा कार्यालय)
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
पी. डब्ल्यू. डी. रोड
जोधपुर – 342001
दूरभाष : 0291 – 2430244

शाखा कार्यालय

1. बीकानेर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, गवर्नमेण्ट प्रेस के पास
2. जयपुर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, पुराने विधानसभा भवन के सामने
3. भरतपुर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिंष्ठान, पुरातत्त्व एवं राजकीय संग्रहालय भवन
4. कोटा, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ब्रजविलास पैलेस, पुरातत्त्व एवं संग्रहालय भवन
5. चित्तौड़, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, किला रोड, हरिभद्र सूरि स्मृति मन्दिर के अन्दर
6. उदयपुर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, सिटी पैलेस
7. अलवर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, महल चौक

वीना लाहोटी
(आर. ए. एस.)
निदेशक

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान में निहित दुर्लभ ग्रन्थराशि एवं चित्रित कलात्मक लघुचित्र भण्डार अद्यावधि आम जन की जानकारी से ओझल रहे है । अतः कला एवं संस्कृति की यह अमूल्य धरोहर आर्ट गैलेरी के माध्यम से कला प्रेमियों को समर्पित है ।

आर्ट गैलेरी

पाल राजपूत, कांगड़ा, पश्चिमी भारतीय, जम्मू कश्मीर, दक्षिण भारतीय तथा राजस्थान के स्थानीय शासकों के काल में पल्लवित स्थान विशेष की लघुचित्र शैलियों के कई ग्रन्थ विभाग के संग्रहालय में सुरक्षित हैं । इसके अलावा द्वित्रिपञ्चपाठात्मक दुर्लभ लेखन शैली के कई निदर्शन स्वरुप ग्रन्थ भी हैं । ताड़, भोज, काष्ठ, पट एवं कागदीय आधारों पर भी कई हस्तलेख हैं ।

प्रथम कक्ष में विश्वविख्यात आर्षरामायण एवं गीतगोविन्द, (मेवाड़ चित्र शैली के उत्कृष्ट निदर्शन) वि. सं. 1485 का कागदीय सोमसुन्दरसूरि के आदेश से लिखित चित्रित कल्पसूत्र, कालकाचार्य कथा, उत्तराध्ययनसूत्र एवं लोकप्रकाशादि (पश्चिमी भारतीय शैली), चर्मपत्रीय आर्य महाविद्या (पाल शैली), सूक्ष्माक्षरीय भागवत, गीता के कई नमूने, दक्षिणी भारतीय एवं उत्तर भारत की कतिपय शैलियों के निदर्शन हैं । विभिन्न खरड़ा ग्रन्थों में जैन क्षमापनापत्र, जन्मपत्रियां, भागवत, भगवद्गीता, एवम् दुर्गामाहात्म्य आदि ग्रन्थ परिगणनीय हैं । एक जैन संघ द्वारा दूसरे संघ को संबोधित क्षमापनापरक विज्ञप्तिपत्र जहां तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं तो षट्चक्रनिरूपण जैसे योगपरक स्क्रोल कुण्डलिनी जागरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं । महत्वपूर्ण दुर्लभ ग्रन्थों में कागज पर उपलब्ध वि. स. 1204 का ध्वन्यालोकलोचन, ताड़पत्रीय वि. सं. 1158 की शतकवृत्ति, पृथ्वीराज रासो की धारणोज वाली लघु लेकिन प्रामाणिक प्रति के अलावा स्वर्णस्याही से आलेखित कल्पसूत्र, अध्यात्मरामायण, अध्यात्मगीता एवम् भगवद्गीतादि कई ग्रन्थ परिगणनीय हैं । अन्य अवान्तर दीर्घा में सामान्यजनापेक्षित कई आकर्षक स्थलो में मणिभद्रयन्त्र, सर्वतोभद्र यंत्र, गायत्री कामधेनु यन्त्र, गोपालपूजन, सूर्यप्रताप यन्त्र, पीरनामा एवम् कर्पूरचक्रादि आदि यन्त्र परिगणनीय हैं जिनके नियमित पूजन एवं सिद्ध होने पर साधक को आयु, विद्या, यश, लक्ष्मी एवं शत्रु से विजय प्राप्त होती है । इन यन्त्रों में जैन, हिन्दू एवं फारसी मन्त्रों का दर्शन सन्निहित है । तृतीय कक्ष में विशाल रंगीन पेनल्स दर्शाये गये हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों का स्वरुप, विभिन्न प्रकार के पाठ व चित्र शैलियां एवम् लिपियों के नमूनों के साथ–साथ कई दुर्लभ सन्दर्भ प्रकाशन भी अवलोकनार्थ रखे गये हैं जिनमें चीन की गुफाओं में प्राप्त बौद्ध चित्र, विश्वविख्यात सोफिया की आर्ट गैलेरी के कलात्मक नमूने, सन् 1866 में प्रकाशित, ओरियन्टल रेसेज प्रकाशन, जेम्स फर्ग्यूसन रचित ''प्राचीन भारत'' के अलावा पेपीरस के कई निदर्शन उल्लेखनीय हैं ।

वीना लाहोटी
आर.ए.एस.
निदेशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
पी. डब्ल्यू. डी. रोड, जोधपुर (राज.)

दूरभाष : 0291–2430244



















